‘SHESHYAARTA’ UPNYAAS MEIN AADHUNIKTA BODH

A Dissertation submitted to the University of Hyderabad in partial fulfilment of the degree of

MASTER OF PHILOSOPHY

In

HINDI

2022

Researcher

SNEHDEEP

20HHHL15

Supervisor

PROF. SACHIDANANDA CHATURVEDI

Department of Hindi, school of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad- 500046

Telangana

India

‘शेषयात्रा’ उपन्यास में आधुनिकता बोध

हैदराबाद विश्वविद्यालय की एम.फिल. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु- शोधप्रबंध

2022

शोधार्थी

स्नेहदीप

20HHHL15

शोध-निर्देशक

प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी

हिन्दी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500046

तेलंगाना

भारत

DECLARATION

I, SNEHDEEP (Registration no. 20HHHL15) hereby declare that dissertation entitle " 'SHESHYAATRA' UPNYAAS MEIN AADHUNIKTA BODH" ('शेषयात्रा' उपन्यास में आधुनिकता बोध) submitted by me under the guidance and supervision of PROF. SACHIDANANDA CHATURVEDI is a bonafide plagiarism free research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in shodhganga/Inflibnet.

Signature of student

SNEHDEEP

Registration no. 20HHHL15

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled " 'SHESHYAATRA' UPNYAAS MEIN AADHUNIKTA BODH " ('शेषयात्रा' उपन्यास में आधुनिकता बोध) submitted by SNEHDEEP bearing Regd. No. 20HHHL15 in partial fulfilment of the requirements for the award of MASTER OF PHILOSOPHY in HINDI is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

As for as I know, This dissertation is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor

PROF. SACHIDANANDA CHATURVEDI

Head of the Department

PROF. GAJENDRA KUMAR PATHAK

Dean of the school

PROF. V. KRISHNA

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

1. प्रथम अध्याय: आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकता बोध का सैद्धांतिक विवेचन

1.1 आधुनिक : अर्थ एवं परिभाषा

1.2 आधुनिकता : अर्थ एवं परिभाषा

1.3 आधुनिकता बोध : अर्थ एवं परिभाषा

1.4 आधुनिक, आधुनिकता एवं आधुनिकता बोध में अंतर

2. द्वितीय अध्याय: उषा प्रियंवदा व्यक्तित्व एवं रचना संसार

1.1 उषा प्रियंवदा का व्यक्तित्व एवं जीवन

1.2 उषा प्रियंवदा का रचना संसार

3. तृतीय अध्याय: हिंदी के आधुनिकता बोध वाले उपन्यास और उषा प्रियंवदा

1.1. हिंदी के आधुनिकता बोध वाले उपन्यासकारों के उपन्यासों में अभिव्यक्त आधुनिकता बोध का विश्लेषण

1.1.1 नरेश मेहता

1.1.2 शशि प्रभा शास्त्री

1.1.3 मोहन राकेश

1.1.4 कृष्णा सोबती

1.1.5 निर्मल वर्मा

1.1.6 राजेंद्र यादव

1.1.7 मन्नू भंडारी

1.1.8 कमलेश्वर

1.1.9 मृदुला गर्ग

1.1.10 ममता कालिया

1.1.11 प्रभा खेतान

1.1.12 चित्रा मुद्गल

1.1.13 मैत्रेयी पुष्पा

1.1.14 नासिरा शर्मा

1.1.15 अलका सरावगी

1.2 आधुनिकता बोध वाले उपन्यासकारों में उषा प्रियंवदा का स्थान

4. चतुर्थ अध्याय: 'शेषयात्रा' उपन्यास में आधुनिकता बोध

1.1 अकेलापन और अजनबीपन

1.2 ऊब

1.3 घुटन और संत्रास

1.4 पागलपन

1.5 प्रवासी जीवन में संघर्ष और मोहभंग की स्थिति

1.6 अस्तित्व की तलाश

1.7 विवाह को लेकर बदलता दृष्टिकोण

1.8 पति-पत्नी के टूटते सम्बन्ध

1.9 निर्णय लेने व जीवन-साथी के चयन की स्वतंत्रता

1.10 यौन- संबंधों का स्वच्छन्द चित्रण

उपसंहार

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

सहायक ग्रंथ

कोश

पत्रिकाएँ

परिशिष्ट

प्रस्तावना

समय महान एवं प्रतिक्षण गतिमान है, जिसका कोई निश्चित आकार न होने के बावजूद एक क्रम अवश्य प्रतीत होता है जिसकी सत्ता हमारे अनुभव में अवस्थित है। यह क्रम है- भूत, वर्तमान और भविष्य का जिसकी अपनी- अपनी गति है और वह गत्यात्मक होते हुए भी एक दूसरे से सम्बद्ध है। समय के इस क्रम को हम प्राचीन काल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल की संज्ञा से अभिहित करते हैं।

हिंदी साहित्य में सन् 1950 ई. के आसपास एक बदलाव, एक नयापन दिखाई पड़ता है, जो आधुनिक परिवेश की देन है। आजादी के बाद नई स्थितियाँ उभरकर आईं जिनका प्रभाव मानव जीवन के हर हिस्से पर दिखाई देने लगा। सामाजिक तथा अन्य क्षेत्रों में व्याप्त ये उभरते परिवर्तन हिंदी साहित्य में भी दिखाई पड़ते हैं।

आधुनिकता बोध, आधुनिक युग की एक अवधारणा है जो निरंतर प्रवाहमान है और ऐतिहासिक बोध से भी जुड़ा है। वैसे तो हर युग अपने बीते युग की तुलना में आधुनिक होता है। आधुनिकता जीवन और साहित्य में पहली बार आई हो ऐसी बात नहीं है। आधुनिकता तो इतिहास में समय-समय पर आती रही है, लेकिन इसका सहज बोध जितना आज हो रहा है उतना किसी भी युग में नहीं हुआ है। शायद ही कोई युग अपने आधुनिक होने के प्रति इतना सचेत हो पाया है जितना कि वर्तमान युग।

विवेक, तर्क तथा विज्ञान में अनेक तत्त्व मध्ययुगीन समाज में भी थे पर वे इतने परिपक्व, संगठित तथा गतिशील नहीं थे कि हम उस समाज को आधुनिक समाज कहें, जबकि आधुनिक युग का प्रारम्भ ही नवजागरण के साथ हुआ। नवजागरण से लेकर आज तक जीवन और साहित्य दोनों में बहुत बदलाव आया है। आज हमें यह महसूस होता है कि कुछ बदल गया

है क्योंकि हमारा वर्तमान हमारे अतीत से बहुत पृथक् है इसलिए हम वर्तमान के प्रति पूर्णरूप से जागरूक हो जाते हैं।

इस प्रक्रिया के दौरान आधुनिकता भी परिवर्तन के कई चरणों से गुज़र चुकी है और गुज़र रही है। बदलते हुए जीवन सन्दर्भ, जीवन-मूल्य, मानवविज्ञान और परिवर्तित संवेदना के संदर्भ में आधुनिकता की चर्चा एवं व्याख्या लगभग छठे दशक से आरम्भ होकर आज तक हो रही है। इसमें निरर्थकताबोध, आत्मनिर्वासन, विवशता बोध, कुंठा, घुटन, संत्रास आदि तत्वों की प्रधानता है।

साठोत्तरी रचनाकारों ने नकारात्मक जड़वादी प्रवृत्तियों से थोड़ा अलग हटकर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। जिसमें निरर्थकता की बजाय संघर्ष की तथा फूहड़ता की बजाय जिजीविषा की खोज की है। आधुनिकता बोध राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय अनुभव का गुणात्मक उत्कर्ष है जो समय के बदले हुए सामाजिक यथार्थ को उसके वास्तविक रूप में समझता है। यह आधुनिकता बोध अब नई और वैचारिक अनिवार्यता का स्वतः परिणाम है। यह वह ज्ञानराशि है जो स्थापित अव्यवस्थाओं के प्रति संदेह का भाव जगाती है तथा इन दुर्गम मार्गों से निकलकर प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करती है।

सृजन के केंद्र में नारी को रखकर साहित्य यात्रा सतत् गतिमान रही। प्रत्येक युग में उसके विवेचन के नए- नए आयाम प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। लेकिन छठे दशक से पुरुष लेखकों के साथ-साथ, महिला लेखिकाओं ने न केवल भाग लिया है बल्कि अपना वर्चस्व भी स्थापित किया है। नारी की विभिन्न समस्याओं को, नारी के अन्तर्मन को बखूबी चित्रित किया है। सृजन तो नारी की पहली विशिष्टता है और प्रकृति प्रदत्त क्षमता भी, जिसका अवलोकन महिला लेखिकाओं की रचनाओं में अभिव्यक्त हुआ है। इन महिला लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा शीर्ष एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन्हें साठोत्तरी महिला लेखिका के रूप में भी जाना जाता है।

इनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि साहित्य के प्रति दृष्टिकोण का पुनः बदलाव। उषा प्रियंवदा ने जिस पारिवारिक परिवेश का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है, वह अपना-सा लगता है। उन्होंने अपने साहित्य के द्वारा यह दिखाने की कोशिश की है कि भले ही समाज का विकास हुआ है किंतु मनुष्यों का आपसी सम्बन्ध टूट ही रहा है। सम्बन्धों के इसी टूटन का सजीव एवं यथार्थ चित्रण उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है।

आधुनिक युग की विवशता, हार, लाचारी, चीख, व्यर्थता, भेद-भाव, बेगानापन, अनिश्चितता, घुटन, बेरोजगारी, निराशा, टूटते संबंध, भय, सेक्स आदि विभिन्न आयाम उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में परिलक्षित होते हैं। उषा प्रियंवदा की रचनाएँ मानव मन की जटिलताओं, समाज की जटिलताओं और मानवीय रिश्तों के रहस्य की रचनाएँ है। आधुनिक जीवन में व्याप्त मूल्यों का विघटन, संयुक्त परिवार की टूटन, संबंधों में उदासीनता, तीसरे व्यक्ति के आगमन से दुखमय दाम्पत्य जीवन की विकृतियाँ, नैतिकता के बंधनों का त्याग, नए उभरते मानवीय संबंध आदि आधुनिक प्रवृत्तियाँ उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में देखने को मिलती हैं।

अतः कहा जा सकता है कि आज के युग में व्याप्त आधुनिकता बोध के प्रायः सभी लक्षण उषा प्रियंवदा के साहित्य में विद्यमान है। इसलिए उनकी रचनाओं का जितना भी विश्लेषण हुआ हो, फिर भी अनेक अछूते एवं अनदेखे पहलू अवश्य शेष रह गए हैं। मेरा यह शोध प्रबंध "शेषयात्रा उपन्यास में आधुनिकता बोध" इस दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को चार अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है- 'आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकता बोध का सैद्धान्तिक विवेचन'। इसमें आधुनिक,

आधुनिकता और आधुनिकता बोध को समझने की चेष्टा की गई है। तत्पश्चात आधुनिक, आधुनिकता एवं आधुनिकता बोध में अंतर को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

'उषा प्रियंवदा: व्यक्तित्व एवं रचना संसार' सम्बन्धी द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत लेखिका के जीवन एवं व्यक्तित्व का परिचय देते हुए यह जानने का प्रयास किया गया है कि उनके लेखन के कौन से प्रेरणास्त्रोत रहे हैं। तथा इस अध्याय में उषा प्रियंवदा की रचना प्रक्रिया को समझते हुए उनकी सम्पूर्ण कृतियों का भी एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय 'हिंदी के आधुनिकता बोध वाले उपन्यास और उषा प्रियंवदा' के अन्तर्गत नरेश मेहता, शशिप्रभा शास्त्री, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा तथा अलका सरावगी आदि रचनाकारों के उपन्यासों में व्यक्त आधुनिकता बोध को उनके पात्रों और कथ्य के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त इन रचनाकारों में उषा प्रियंवदा के विशिष्ट स्थान को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय 'शेषयात्रा उपन्यास में आधुनिकता बोध'। इस अध्याय के अन्तर्गत शेषयात्रा उपन्यास में व्यक्त आधुनिक मानव जीवन की वास्तविकता एवं विभिन्न समस्याओं को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अकेलापन और अजनबीपन, ऊब, घुटन और संत्रास, पागलपन, प्रवासी जीवन में संघर्ष और मोहभंग की स्थिति, अस्तित्व की तलाश, विवाह को लेकर बदलता दृष्टिकोण, पति-पत्नी के टूटते सम्बन्ध, निर्णय लेने एवं जीवन साथी के चयन की स्वतंत्रता, तथा यौन संबंधों का स्वच्छंद चित्रण। ये तत्व उपन्यास के किन पात्रों और संवादों के माध्यम से प्रतिबिम्बित होते हैं इसे भी स्पष्ट किया गया है।

विषय चयन से लेकर इस शोध प्रबंध को अंतिम रूप देने तक मुझे मेरे शोध-निर्देशक प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी जी के अक्षय ज्ञान भंडार और विषय में विशेष योग्यता से उचित मार्गदर्शन मिला। यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे प्रो. चतुर्वेदी जी जैसे विषय के ज्ञाता एवं सतत प्रेरणा देने वाले निर्देशक की देख-रेख में शोध करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस शोध को अंतिम रूप देने में मेरा पथ-प्रदर्शन किया, मेरी त्रुटियों को तर्कबद्धता से सुधार कर मुझे कार्योन्मुख बनाने में उन्होंने पूर्ण योगदान दिया है। अत: उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

हमारे विभागाध्यक्ष प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक तथा विभाग के अन्य विद्वानों से भी मुझे उचित मार्गदर्शन मिला जिसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ। मैं अपने पूजनीय माता-पिता की भी आभारी हूँ। आज मैं जो कुछ भी हूँ केवल उन्हीं के कारण हूँ। उन्होंने मुझ पर से अपना विश्वास कभी कम नहीं होने दिया, इसका मुझे गर्व है। इसके अतिरिक्त मैं अपने मित्रों ज्योति, करमचन्द और सुरेन्द्र के प्रति आभारी हूँ, साथ ही मैं कपिल भैया की भी आभारी हूँ जिन्होंने सामग्री जुटाने में, शोध प्रबंध को टंकित कराने में समय-समय पर मेरी सहायता की। अंत में उन सभी लेखकों, विद्वानों और सुधीजनों के प्रति आभार जिनके लेखन से सहायक सामग्री लिए बिना इस शोध प्रबंध का संपन्न होना संभव न था।

प्रथम अध्याय

आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकता बोध का सैद्धांतिक विवेचन

समकालीन चिन्तन में आधुनिकता एक ऐसी अवधारणा है जिसके ऊपर विश्व के हर देश में, हर समाज में, बहुत बहस होती रही है, और अब भी होती है। भारत में भी आधुनिकता को लेकर वाद-विवाद और मारा-मारी का कोई अंत नहीं। हमारे यहाँ आधुनिक होना फैशनेबल ही नहीं, श्रेष्ठता का सूचक है। निजी सम्बन्ध, सामाजिक जीवन, रीति-रिवाज, राजनैतिक-आर्थिक विचार आदि क्षेत्रों में अपने को आधुनिक कहना, समझना और दूसरों द्वारा समझा जाना हमें अच्छा लगता है।

एक जीवन-मूल्य के रूप में आधुनिकता की अवधारणा पश्चिमी समाज की देन है और वहाँ की विशेष आर्थिक-सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों की ही अनिवार्य उपज है। इंद्रनाथ मदान ने अपनी पुस्तक 'समकालीन साहित्य; एक दृष्टि' में कहा है कि "आधुनिकतावाद नाम की अवधारणा, सिद्धांत या आईडियोलॉजी के रूप में दूसरे महायुद्ध के बाद की सृष्टि है।"[1]

यूरोप में उन्नीसवीं सदी के अंत में प्राचीन और मध्ययुग से भिन्न एक नई जीवन-दृष्टि की शुरुआत हुई, जो एक ओर औद्योगीकरण एवं औपनिवेशिक शोषण से उत्पन्न आर्थिक समृद्धि पर आधारित थी, और दूसरी ओर ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नई-नई खोजों, अविष्कारों, मान्यताओं और विकारों पर। कई दशकों में धीरे-धीरे विकसित और स्थापित होने वाली इस

---

[1]समकालीन साहित्य; एक दृष्टि: इंद्रनाथ मदान, प्रथम संस्करण1977, पृष्ठ 60

जीवन दृष्टि की मुख्य विशेषताएँ कई हैं- पारम्परिक विश्वासों-धारणाओं और विचारों को जाँचना और परखना, उनके बारे में प्रश्न उठाना और निरंतर शंका, बहस तथा विवाद, किसी भी निष्कर्ष को मानना, सम्पूर्ण सत्य की बजाय खंड सत्य पर विश्वास करना, प्रगति की अवधारणा और मानव भविष्य के बारे में शंका और अनिश्चिय, प्रचलित सामाजिक नैतिक मान्यताओं से विद्रोह आदि-आदि।

इस बदलती हुई जीवन-दृष्टि ने कला और सौन्दर्यबोध की धारणा को भी बदला है। पश्चिमी जगत के कला-सहित्य में आधुनिकता का बोध इसी बदले हुए बौद्धिक, मानसिक सन्दर्भ से जुड़ा हुआ है। पश्चिमी जगत् की इस मानसिक-बौद्धिक तथा कला सम्बन्धी उथल-पुथल का अनेक कारणों से हमारे देश के चिन्तन और आचरण पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। कविता तथा अन्य साहित्य-विधाओं, चित्र, मूर्ति, स्थापत्य आदि कलाओं पर यह प्रभाव बहुत ही व्यापक तथा गहरे रूप से पड़ा है। हमारे देश में भी आधुनिकता बोध कला-सहित्य का एक बहुचर्चित पैमाना बन गया है। पश्चिम में इसका आरम्भ 18वीं शती में हुआ, जबकि भारत में आधुनिकता का आगमन 20वी शताब्दी के आरम्भ से माना जाता है।

पुराने और नए की भाँति समय के प्रवाह से उपजी आधुनिकता का प्रसार मध्यकाल और आधुनिक काल के छोरों में दिखाई देता है। भारत में मध्यकालीनता जहाँ ईश्वर के प्रति प्रचंड आस्था एवं विश्वास के साथ इहलोक के स्थान पर परलोक, नियतिवाद एवं कर्मफल पर बल देती है, वहाँ आधुनिकता इनके सम्मुख प्रश्न ही नहीं खड़ा करती, बल्कि मनुष्य और उसके जीवन को केंद्र में रखकर सोचने और आगे बढ़ने का आह्वान भी करती है, क्योंकि आधुनिकता विश्वव्यापिनी है। यह राष्ट्रीयता, प्रान्तीयता अथवा जातीयता की परिधि को लाँघने वाला एक

सार्वभौमिक चरित्र है, जिसे बहुसंख्य समाज शिरोधार्य करता है, अपनाता है। इसका वेग एक प्रबल नदी प्रवाह जैसा होता है। सतत परिवर्तनशील होना, इसका स्वभाव है। सूरज और सितारों की तरह निरंतर गतिमान रहना इसका धर्म है। आज की आधुनिकता कल पुरातन हो सकती है, भूत या अतीत हो सकती है, परन्तु आधुनिकता कभी भविष्य या उत्तर नहीं हो सकती। क्योंकि आधुनिकता सतत् परिवर्तनशील, प्रवाहयुक्त, गतिशील तथा प्रत्यक्ष से जुड़ी होती है।

आधुनिकता एक जीवन दृष्टि है, सृजनात्मकता का उत्सव है। संश्लिष्ट सामाजिकता में आधुनिकता आयातित न लगकर स्वाभाविक प्रस्फुटित अनिवार्यता लगती है। सामाजिकता को व्यापक राष्ट्रीयता के आलोक में प्रतिष्ठित करना उस आधुनिकता का परिणाम है जिसमें शासक-शासित का भेद स्वतः समाप्त हो जाता है। व्यक्ति व्यवस्था का अंग बन जाता है, सामाजिक कुरीतियों पर तीव्र प्रहार करता है। आधुनिकता समग्र आयामों से सत्य को देखने के लिए आग्रहशील है। साहित्य और इतिहास की पारस्परिकता आधुनिकता की वह चेतना है, जो समसामयिक के आकलन में साधक सिद्ध होती है। साहित्य में सामाजिकता, राष्ट्रीयता, व्यक्तिहित, चिन्तन, सांस्कृतिक परिष्कार आदि आधुनिकता के भिन्न आयाम है। समसामयिक संदर्भ में इस क्षमता का निखार आधुनिकता की पहचान है। जब तक व्यक्ति का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित नहीं होता, तब तक व्यक्ति स्वातंत्र्य को महत्त्व देना आवश्यक है, किंतु इसके साथ सार्थक दिशाबोध भी अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। सामाजिक सन्दर्भों को दायित्वबोध की क्षमता से वहन करने की कोशिश आधुनिकता है। "चेतना के महत्त्व के कारण बौद्धिकता की वृद्धि से आधुनिक मनुष्य अकेला हो गया है। वह अपने अस्तित्व के बारे में चिन्तन करता है। वह आधुनिक युग के परिवर्तित दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। आधुनिकता आज के

मनुष्य के आंतरिकबोध को स्पष्ट करती है।"[2] यहाँ हम सर्वप्रथम आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकता बोध के अर्थ व परिभाषाओं को समझने का प्रयास करेंगे।

1.1 आधुनिक: अर्थ एवं परिभाषा

"'अधुना' अव्यय में 'ठञ्' प्रत्यय लगाकर 'आधुनिक' शब्द की निष्पति होती है।"[3]

" 'अधुना' का अर्थ है- 'अब', 'इस समय','इन दिनों' "[4]

'ठञ्' प्रत्यय के बाद बना आधुनिक शब्द विशेषण हो जाता है जिसका अर्थ होता है "आजकल का, वर्तमान काल का, नये ज़माने का"[5] सामान्यतः लोग 'आधुनिक' का अर्थ नूतन या नवीन से लेते हैं। "अंग्रेजी में 'आधुनिक' शब्द के लिए 'माडर्न' शब्द का प्रयोग होता है।"[6] "लैटिन शब्द 'मोडो' (MODO) से मॉडर्न (MODERN) बना है।"[7] शब्दकोश में इसका अर्थ दिया है- Modolately, Just now,

'मॉडर्न' का अर्थ है- Being or existing at this time, 'present'[8]

---

[2] आधुनिकताबोध और आधुनिकीकरण , रमेश कुंतल मेघ , पृष्ठ 26

[3] साहित्य धर्मिता(चातुमीसिक पत्रिका) हृदय नारायण सिंह, पृष्ठ 13

[4] बृहत हिंदी कोश :- स. कलिका प्रसाद, पृष्ठ 40

[5] वही ,पृष्ठ 126

[6] आधुनिकता और मोहन राकेश:- डॉ. उर्मिला मिश्र, पृष्ठ 01

[7] साहित्यधर्मिता:- हृदय नारायण सिंह, पृष्ठ 14

[8] बीसवीं सदी के पौराणिक हिंदी प्रबंधकाव्य और आधुनिकता- डॉ. गो. रा. कुलकर्णी, पृष्ठ 11

काल सापेक्ष दृष्टि में 'आधुनिक' का अर्थ है- 'समसामयिक'। इसका मतलब है काल का वह खंड जो इस समय है। "आधुनिक' का अर्थ बृहत हिंदी कोश में इस प्रकार दिया है - आजकल का, वर्तमान काल का, नए जमाने का"[9]

सुधीश पचौरी के अनुसार "आधुनिकता जिस 'मॉडर्निटी' शब्द का हिंदी प्रयोग है, वह अंग्रेजी में ग्रीक 'मोडो' (क्रियाविशेषण) से आया है, जिसका अर्थ है, हाल-फिलहाल, अभी का, आज, इस समय का, समकालीन।"[10]

अर्थात वर्तमानकालीन या सद्यःस्थिति में चल रहा आधुनिक है। शब्द कोश में भी 'मॉडर्न' (आधुनिक) की व्युत्पति लैटिन में 'मॉडर्नस' से ही बतलाई गई है। आधुनिक और आधुनिकता के लिए अंग्रेजी में क्रमशः 'मॉर्डन'(Morden), 'मॉडर्निटी' (Modernity) शब्द प्रयुक्त होता है।"[11]

यूरोप में सोलहवीं सदी के मध्य से लेकर उन्नीसवीं सदी के मध्य तक आधुनिक शब्द का प्रयोग 'वर्तमान' के पर्याय के रूप में किया जाता था।

वेबस्टर के शब्द कोश के अनुसार आधुनिक(मॉर्डन) का अर्थ है "कला क्षेत्र में एक आंदोलन या शैलीविशेष जिसका लक्षण है- परम्परागत शास्त्रीय रूपों और अभिव्यक्ति- प्रणाली

---

[9] बृहत हिंदी कोश:- स. कलिका प्रसाद, पृष्ठ 126

[10] नया ज्ञानोदय- सम्पादक श्रीमती रमा जैन, श्री शहू शांति प्रसाद जैन, अंक 48, पृष्ठ 96

[11] www.en.wikipedia.org/wiki/modernism पृष्ठ 01

से विच्छेद अथवा प्रयोग, निर्भीकता और सर्जनात्मक मौलिकता पर बल और आधुनिक विषयों पर विचार करने का प्रयास।"[12]

संदीप रणभिरकर के शब्दों में-आधुनिक शब्द के उपर्युक्त अर्थ में निम्नलिखित प्रवृत्तियों के संकेत मिलते है:-

1) परम्परागत मूल्यों से विच्छेद की भावना

2) अभिव्यक्ति प्रणाली की नवीनता

3) रचना के क्षेत्र में मौलिकता

4) काव्य या साहित्य में नए विषयों का समावेश

5) माध्यम और विषय के क्षेत्र में प्रयोग"[13]

आधुनिक शब्द का प्रयोग 'डॉ. नगेंद्र' ने तीन अर्थों में किया है- "एक अर्थ समय सापेक्ष है, जिसके अनुसार आधुनिक एक विशेष कालावधि का द्योतक है। दूसरा अर्थ विचार परक है, जिसके अनुसार आधुनिक एक विशेष दृष्टिकोण है और तीसरे अर्थ में आज के सीमित संदर्भ में एक अर्थ समसामयिक भी है।"[14] अगर हम डॉ. नगेंद्र के ही शब्दों में समझने का प्रयास करें तो उन्होंने 'आधुनिक' शब्द को इस तरह भी देखा है:- "मध्यकाल से भिन्न, नवीन इहलौकिक

---

[12] वेबस्टर: थर्ड न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी वॉल्यूम-2, पृष्ठ 02

[13] उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में आधुनिकता बोध:- संदीप विश्वनाथराव रणभिरकर, पृष्ठ 14

[14] आलोचक की आस्था- डॉ. नगेन्द्र, श्री धनथ्याम दास बिडला व्याख्यानमाला, पृष्ठ 29

दृष्टिकोण। मध्यकाल अपने अवरोध, जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एकरस था। विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया से उसे पुनः गत्यात्मक बनाया गया। (नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण)- धर्म, दर्शन, साहित्य, कला आदि सभी के प्रति नवीन दृष्टिकोण को अपनाया गया।"[15] जहाँ व्यक्ति पहले मात्र उस लोक की बातें करता था, और अपने आज के प्रति बिल्कुल जागृत नहीं था, वहीं 'आधुनिक' समय में व्यक्ति अपने व अपने आस-पास के प्रति अधिक सजग और सतर्क दिखाई देता है। यहाँ 'आधुनिक' शब्द मध्यकालीनता से एकदम अलग होने की सूचना देता है। "आधुनिक एक दृष्टि है जो वैज्ञानिक अविष्कारों तथा प्रौद्योगीकरण का अनिवार्य परिणाम है।"[16]

निष्कर्षतः डॉ. नगेंद्र के अनुसार आधुनिक शब्द समय सापेक्षता एवं मूल्य सापेक्षता गर्भित होता है जो युगीन परिवेश में अपने आपको नवीनीकृत करके नई जीवन दृष्टि देता है। 'आधुनिक' शब्द को 'सामयिकता' और 'नवीनता' इन दोनों शब्दों से कुछ जोड़कर और कुछ अलगा कर भी समझने की आवश्यकता है। 'आधुनिक' का अर्थ केवल समकालीनता नहीं है, क्योंकि समकालीनता जिन तत्वों के योग से बनती है, उनमें अनेक तत्व मृत होते हैं। समकालीन जीवन दृष्टि आधुनिकता को संवाहित करती है और नहीं भी। जैसे साम्प्रदायिकता हमारे जीवन की सामयिकता है परन्तु साम्प्रदायिक, निरपेक्षता आधुनिकता है।

संदीप रणभिरकर के शब्दों में " 'समसामयिक' और 'वर्तमान' का काल विस्तार आधुनिक की अपेक्षा कम है। उदाहरण के लिए 'आधुनिकयुग' के अन्तर्गत हम भारतेन्दु से लेकर

---

[15] हिंदी साहित्य का इतिहास- स. डॉ. नगेन्द्र, सह स. डॉ. हरदयाल, पृष्ठ 427-428

[16] मधुमति (पत्रिका), जनवरी 1981 , पृष्ठ 38

आज तक के काल- विस्तार को समाहित करते हैं। आधुनिक युग में कितने ही समसामयिक और वर्तमान समाये हुए हैं। 'आधुनिक' में जो विस्तार व गहराई है वह 'समसामयिक' या 'वर्तमान' में नहीं।"[17]

आचार्य शुक्ल ने 'आधुनिक' शब्द का प्रयोग कालवाची अर्थ में किया है। जो अंग्रेजी 'मॉडर्न' शब्द का पर्याय है। और इसी अर्थ में आधुनिक काल का नामकरण किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक अपने मूल अर्थ में काल सापेक्ष है। हम पाते हैं कि जो कुछ भी आज कल का है या अभी/अब का है वह 'आधुनिक' है। हर क्षेत्र में हमारे व्यवहार, क्रिया-प्रक्रिया में समाज-संगठन में जो अभी है, और चल रहा है वह सभी आधुनिक कहा जा सकता है, क्योंकि उसमें पुराने से कुछ अलग होता है, एक नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण जो हमें अपनी ओर तत्काल आकर्षित करता है। इसलिए उन क्रियाओं को 'आधुनिक' कहा जा सकता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि विभिन्न शब्दकोशों, आलोचकों और विद्वानों के अनुसार 'आधुनिक' शब्द की परिभाषा भिन्न-भिन्न ठहरती है, जो अपने अर्थ-विस्तार में कई आयामों को समाहित किये हुए है; यथा कालवाची सन्दर्भ और समसामयिकता के अर्थ में। उपर्युक्त सभी परिभाषाओं और अर्थों के अनुसार, आधुनिक का अर्थ केवल 'समसामयिकता' से नहीं लेना चाहिए अपितु विचारपरकता और मूल्यबोध से भी ग्रहण करना चाहिए।

---

[17] उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में आधुनिकता बोध:- संदीप विश्वनाथराव रणभिरकर, पृष्ठ 15

1.2 आधुनिकता: अर्थ एवं परिभाषा

'आधुनिक' शब्द में 'ता' प्रत्यय लगाकर 'आधुनिकता' बन जाता है। जिसका अर्थ होता है- 'नवीन' या 'साम्प्रतिक बनानेवाली प्रवृति'[18]

कोषगत सन्दर्भों के आधार पर 'आधुनिकता' का अर्थ है 'नूतनता' 'नवीनता' वर्तमान काल से जोड़ने वाली प्रवृति 'समकालीनता' 'समसामायिकता'[19] अंग्रेजी में आधुनिकता के लिए 'मॉडर्निटी' शब्द का प्रयोग होता है जिसे 'नूतनता और नवीनता' का वाचक माना गया है।[20] बृहत् हिंदी कोश में आधुनिकता का अर्थ इस प्रकार दिया गया है - "आधुनिक होने का भाव, एक ऐसा दृष्टिकोण जो मनुष्य की नियति को पूर्व परम्परा से सम्बन्ध न मानकर नए युग की स्थितियों के अनुसार परिभाषित करे।"[21] इस तरह हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों के कोषगत सन्दर्भों के आधार पर आधुनिकता, नूतनता, नवीनता तथा समकालीनता के समकक्ष है।

आधुनिकता का स्वरूप कालसापेक्षता तथा विचारसापेक्षता दोनों की सहायता से समझा जा सकता है। मानवीय जीवन अपूर्व है। उसका अधूरापन कल्पना तथा आदर्श से भरने की चेष्टा मध्ययुग करता था परन्तु आधुनिक मानव जीवन की पीड़ा, उसकी यथार्थता में स्वीकार करके उसको व्यक्त करता है। अतः मानवी पीड़ा का आधुनिकता से गहरा सम्बन्ध है।

---

[18] अंग्रेजी हिंदी कोश:- फादर कामिल बुल्के, पृष्ठ 504

[19] आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय:- डॉ. धनञ्जय वर्मा, दिल्ली, पृष्ठ 179

[20] R.C Pathak :- Bhargava's standard illustrated dictionary, page 521

[21] बृहद हिंदी कोश:- स. कालिका प्रसाद, पृष्ठ 126

यहाँ भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई आधुनिकता की परिभाषाओं के माध्यम से आधुनिकता के अर्थ व स्वरूप पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई आधुनिकता की परिभाषाएँ

पाश्चात्य विचारकों में से मैक्स वेबर, रोजेनाऊ, चार्ल्स बाउडेलेयर और बार्कर इत्यादि ने आधुनिकता को परिभाषित करने का प्रयास किया है जो इस प्रकार है:-

मैक्स वेबर:- मैक्स वेबर ने 'द प्रोटेस्टेन्ट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिजम' में आधुनिकता को इन शब्दों में परिभाषित किया है: आधुनिकता व्यक्ति एवं समाज के सदा से चले आ रहे स्वरूप को मिलने वाली स्पष्ट स्वीकृति है। आधुनिकता अस्मिता, अतीत में की गई अस्मिता की संरचनाओं की श्रृंखला में मात्र अगली कड़ी नहीं है, बल्कि यह इन संरचनाओं के मूल में उपस्थित कारणों पर से पर्दा उठाने की प्रक्रिया है।"[22] यानी कि मनुष्य के हस्तक्षेप द्वारा विश्व में परिवर्तन होना आधुनिकता है। जो किसी पूर्व सामाजिक व्यवस्था की तुलना में अधिक गतिशील है। यह परिभाषा सामाजिक और साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

रोज़ेनाऊ:- सामाजिक दृष्टि से आधुनिकता की व्याख्या करते हुए 'रोज़ेनाऊ' लिखते हैं "आधुनिकता एक प्रगतिशील बल की ओर निर्देशित है जो मानव जाति को अज्ञानता और तर्कहीनता से मुक्त कराने का वादा करती है।"[23] अर्थात् आधुनिकता का युग सामाजिक रूप से प्रगतिशीलता का युग है, जो मनुष्य की अज्ञानता को तर्क सहित दूर करने का प्रयास करता है और नई मौलिक चुनौतियाँ पैदा करता है।

---

[22] उत्तर आधुनिकता कुछ विचार:- स. देव शंकर नवीन एवं सुशांत कुमार मिश्र, पृष्ठ 56

[23] http://hi.wikipedia.org/wiki पृष्ठ 03, 29/11/2011

चार्ल्स बाउडेलेयर:- चार्ल्स बाउडेलेयर ने कलात्मक दृष्टि से आधुनिकता की परिभाषा देने की चेष्टा की है। 'द पेंटर ऑफ मॉडर्न लाइफ' निबंध में आधुनिकता की शाब्दिक परिभाषा देते हुए चार्ल्स लिखते हैं "आधुनिकता से मेरा मतलब है क्षणभंगुर, भगोड़ा, आकस्मिक।"[24] संक्षेप में, अब का नया या क्षणभंगुर, जो आने वाले भविष्यकाल में नष्ट होने वाला है किंतु आज आधुनिक है। हर युग का साहित्य भी उसी तरह अपने युग की आधुनिकता को लेकर लिखा होता है।

बॉर्कर:- बॉर्कर 'मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया' में लिखते हैं "आधुनिकता शब्द आमतौर पर उत्तर पारम्परिक, उत्तर-मध्ययुगीन ऐतिहासिक अवधि को संदर्भित करता है, जो सामंतवाद (भू- वितरणवाद) से पूंजीवाद, औद्योगीकरण, धर्मनिरपेक्षवाद, युक्तिकरण, राष्ट्र-राज्य और उसकी घटक संस्थाओं तथा निगरानी के प्रकारों की ओर कदम बढ़ाने से चिह्नित होता है।"[25]

संक्षेप में, आधुनिकता मानवी जीवन के विकासक्रम की व्याख्या है। जो मानव की प्रगति को विस्तार से हमारे सम्मुख रखती है।

ध्यातव्य है कि 'आधुनिक' शब्द का अर्थ केवल शब्दकोशों तक सीमित न हो, इसलिए उसके अर्थों को कई सन्दर्भों जैसे सामाजिकता, कला के भिन्न-भिन्न रूप और प्रगतिशीलता इत्यादि में भी समझा जाना आवश्यक है। इसी सन्दर्भ में पश्चिम में 'आधुनिक' की परिभाषा सामाजिक, प्रगतिशील और कलात्मक रूप में दी गई है। उपर्युक्त विद्वानों के विचारों के केंद्र में मानव जीवन के विकासक्रम की व्याख्या है, जो अपने पूर्ववर्ती समय से तो भिन्न है किंतु प्रगतिशीलता की अनुगामी है।

---

[24] 'द पेंटर ऑफ मॉडर्न लाइफ':- चार्ल्स बाउडेलेयर, पृष्ठ 13

[25] मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया:- बॉर्कर, पृष्ठ 05

भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई आधुनिकता की परिभाषाएँ

डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रमेश कुंतल मेघ, रामधारीसिंह दिनकर, डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल, केदारनाथ अग्रवाल, कमलेश्वर, हरिशंकर जी आदि विचारकों ने अपनी ओर से आधुनिकता की परिभाषा देने का प्रयास किया है जो इस प्रकार है :-

डॉ. नगेन्द्र:- "आधुनिकता मध्ययुगीन जीवन दर्शन से भिन्न एक नया जीवन दर्शन और दृष्टिकोण है।"[26] संक्षेप में, आधुनिकता एक विशेष दृष्टिकोण है, जो मानव प्रगति और नवीन परिवेश को स्वीकार करके चलता है।

डॉ. रमेश कुंतल मेघ:- डॉ. रमेश कुंतल मेघ 'आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण' किताब में लिखते हैं "एक समग्र आधुनिकता तो सामाजिक व्यवस्था का पदार्पण, संस्कृति का मूल्यचक्र, विभिन्न समूहों की चिन्तन पद्धति तथा विभिन्न मनुष्यों की वृत्तियों का अमूर्त पैटर्न है। इसके अलावा वह आधुनिकीकरण से अनिवार्यतः सम्बद्ध है तथा व्यक्तियों या समूहों में उसका अपने अपने ढंग के आधुनिक बोधों के द्वारा अनुकीर्तन होता है। इस प्रकार आधुनिकीकरण- आधुनिक बोध- आधुनिकता का एक सातत्य है।"[27] संक्षेप में, व्यापक आधुनिकीकरण समाजीकृत आधुनिकीकरण को एक राष्ट्रीय और मानवीय क्षितिज देता है। इसलिए हम आधुनिकता की समस्या को एक ओर राष्ट्रीय संस्कृति के प्रश्न से जोड़ सकते हैं, तो दूसरी ओर समाज के आधुनिकीकरण से। इसलिए आधुनिकता एक विचार विधि, एक व्यवस्था है, जो समग्र धारणा एवं चिन्तन पद्धति, एक वृति अथवा मूल्यचक्र से अभिहित है।

---

[26] आलोचक की आस्था:- डॉ. नगेन्द्र, श्री घनश्यामदास बिड़ला, व्याख्यानमाला, पृष्ठ 29

[27] आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण:- डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृष्ठ 331-332

रामधारीसिंह दिनकर:- "आधुनिकता एक प्रक्रिया का नाम है। यह प्रक्रिया अन्धविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। आधुनिक वह है जो मनुष्य की ऊँचाई, उसकी जाति या गोत्र से नहीं, बल्कि उसके कर्म से नापता है। आधुनिक वह है, जो मनुष्य मनुष्य को समान समझता है।"[28] संक्षेप में, दिनकर के अनुसार आधुनिकता कालमुक्त प्रक्रिया है, जो मनुष्य को नई वैज्ञानिक दृष्टि देती है और समानता का धर्म सिखाती है।

डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल:- "आधुनिकता स्वयं कोई मूल्य नहीं वह तो एक दृष्टि भर है- एक अनुभूति है। काल विशेष को आधुनिकता कहना ठीक नहीं है। काल विशेष में जीवित रहनेवाला हर व्यक्ति या साहित्यकार आधुनिक नहीं है, आधुनिकता समसामयिक सन्दर्भों से जुड़ी हुई नई जीवन दृष्टि है।"[29] इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिकता का सम्बन्ध अनुभूति, अभिव्यक्ति और संघर्ष चेतना से है। वह बाहर की दिखावट या सजावट के लिए रखी गई वस्तु नहीं है। आधुनिकता में यथार्थ का और भोगे हुए यथार्थ के प्रत्येक क्षण का महत्त्व है।

केदारनाथ अग्रवाल:- "आधुनिकता अस्वीकृति और स्वीकृति, समस्या और समाधान दोनों ही है।"[30] संक्षेप में, आधुनिकता कालबद्ध चेतना है। उसका एक रूप विघटनात्मक तथा दूसरा रूप संगठनात्मक है, जहाँ आधुनिकता जीवन के स्वीकृत मूल्यों पर प्रहार करती है, वहाँ कुण्ठाओं को जन्म भी देती है। आधुनिकता का संगठनात्मक स्वरूप जीवन को संश्लिष्ट रूप प्रदान करता है। आधुनिकता के दूसरे रूप का प्रतिफल अदम्य शक्ति है।

---

[28] आधुनिकता बोध एवं मोहन राकेश का कथा साहित्य- राजनारायण शुक्ल, बी. आर. पृष्ठ 17

[29] अमृतलाल नागर के उपन्यासों में आधुनिकता:- डॉ. अनीता रावत, पृष्ठ 14-15

[30] कल्पना-स.मधुसुदन चतुर्वेदी, अंक 157, पृष्ठ 42-43

कमलेश्वर:- "आधुनिकता एक ऐसी मानसिक- बौद्धिक स्थिति है जो अपने परिवेश और समाज की गहनतम समस्याओं से उद्भूत होती है और समकालीन जीवन को संस्कार देती है। मानव मूल्य सर्वव्यापी और सार्वजनिक होते हुए भी आधुनिकता का स्वरूप अपनी जातीय विशेषताओं से अलग नहीं होता। जातीय संस्कारों के रहते हुए भी इसमें इतनी उदारता है कि वह विजातीय गुणों को अपने में समाहित करने की शक्ति रखती है।"[31] अतः जिसे हम आधुनिकता कहते हैं, वह आज के सन्दर्भ में 'संकट बोध' ही है, यानी पुरानी जीवन-प्रणाली और व्यावहारिक दृष्टि तथा नई जीवन प्रणाली और नई जीवन दृष्टि ने हमारे सामने चुनाव की समस्या या संकट खड़ा कर दिया है।

हरिशंकर जी:- "आधुनिकता के साथ एक विचार समूह संलग्न है। यद्यपि विज्ञान आधुनिकता नहीं है, लेकिन आधुनिकता का अवसर अवश्य सिद्ध हुआ है।"[32] हरिशंकर जी के अनुसार आधुनिकता में वैचारिकता की अपेक्षा मानसिकता कम महत्वपूर्ण है। मानसिकता की अपेक्षा युगीन परिवेश अधिक महत्त्वपूर्ण है। कुछ साठोत्तरी लेखकों के अनुसार आधुनिकता को प्रक्रिया के रूप में समझा गया है।

"हर अगला काल अपने पूर्ववर्ती की अपेक्षा आधुनिक या अधिक आधुनिक होता है।"[33]

आधुनिकता की प्रकृति में गत्यात्मकता का समावेश रहता है। समय की गति में हमेशा परिवर्तन होता रहता है। समय की रफ्तार में कोई रुकावट नहीं होती। लेकिन वर्तमान में भोगते हुए क्षणों का अंश भूत के क्षणों में छिपा रहता है। "प्रत्येक युग अपने काल में आधुनिक

---

[31] समकालीन कहानी:- कुछ विचार बिंदु- स. डॉ. धनञ्जय, पृष्ठ 42

[32] ज्ञानोदय:-स. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, फरवरी 1969, अंक 68, पृष्ठ 75

[33] हिंदी साहित्य कोश:- स. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, भाग-1

रहता है। क्योंकि हर युग में नई समस्याओं का जन्म होता रहा है और उसके समाधानों के लिए नए रास्तों का अन्वेषण होता रहा है।"[34]

प्रत्येक कालखंड पिछले काल से कुछ अंश अथवा मात्रा में आधुनिक दृष्टिकोण में आगे रहता है। इस दृष्टिकोण से हर समय में अथवा काल में परिवर्तन आता रहता है। नई समस्याओं, सम्भावनाओं का जन्म होता रहता है। विकास के अनेकानेक चरण हर युग में जन्म लेते हैं। इस तरह वर्तमान काल पिछले काल से थोड़ी मात्रा में आगे रहता है।

'आधुनिकता' को कभी 'प्रक्रिया' तो कभी 'मूल्य' के रूप में समझा जा रहा है। कभी भाव-बोध, कला-बोध तो कभी साहित्य कलागत प्रयोग और कभी आंदोलन समझा जा रहा है। लेकिन आधुनिकता अपने व्यापक अर्थ को लेकर प्रस्तुत हुई है। उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आधुनिकता काल सापेक्ष होने के साथ-साथ एक प्रक्रिया है, जिसमें मूल्यों का निर्माण होता है।

दृष्टि वह है जिसमें एकरूपता नहीं हो सकती। यही दृष्टि- वैविध्य आलोचकों व विद्वानों को एक अलग नज़र देता है, भाषायी ताकत देता है, जिससे वह अपने विचारों की दुनिया तैयार करते हैं। यहीं से शब्दों को पहले अर्थ फिर विधा के रूप में समझा गया। जैसे कहानी का पहले एक निश्चित अर्थ था, फिर उसमें कई तत्व समाहित हुए। इसी प्रकार नए-नए साहित्यिक तत्वों के सम्मिश्रण से नई विधाएँ सामने आयी। उपर्युक्त विचारकों में किसी ने आधुनिकता को कालवाची रूप में देखा तो किसी ने मानवता के सन्दर्भ में, किसी ने आधुनिकीकरण के सन्दर्भ में तो किसी ने संघर्ष चेतना के रूप में। इस प्रकार आधुनिकता सत्य को ग्रहण करने की एक

---

[34] आधुनिकता और मोहन राकेश:- डॉ. उर्मिला मिश्र, पृष्ठ 02

यथार्थवादी दृष्टि है। आधुनिकता बाह्य आरोपित वस्तु नहीं होती है। उसमें देशकाल की अनुभूति का समावेश होता है। आधुनिक साहित्य रचयिता युगीन परिवेश का सीधा साक्षात्कार करता है और बदलते हुए सन्दर्भों को ग्रहण करते हुए रचना करता है। आधुनिकता देश काल सापेक्ष्य होते हुए भी, यह समकालीनता के बंधन में नहीं बांधी जा सकती। आधुनिकता अतीत के व्यतीत सन्दर्भों को ठुकराकर उसे वर्तमान की प्रासंगिकता से जोड़ती हुई भविष्य में सम्भाव्य बनाने का प्रयत्न करती है।

1.3 आधुनिकता बोध: अर्थ एवं परिभाषा

आधुनिक युग रेनेसा से शुरू हुआ लेकिन भारतीय इतिहास में इस युग की शुरुआत हिंदी साहित्य के आधुनिककाल से मानी जाती है। यूरोप में सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया, जिसने पूरे यूरोप की प्रकृति को बदल दिया। नगरीकरण-शहरीकरण के कारण मानवीय स्वभाव में भी बदलाव आया। सामाजिक मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव आया। यह काल 'आधुनिक काल' से अभिहित है। इसका प्रभाव भारतीय जनमानस पर भी हुआ। एक नया बोध सर्वत्र छा गया। 'आधुनिकबोध' पर विचार करने से पूर्व हमें इसके अर्थ को समझना आवश्यक हो जाता है।

आधुनिकता बोध को दो शब्दों 'आधुनिकता' और 'बोध' के आलोक में जानना उचित होगा। मानक हिंदी कोश के अनुसार - "आधुनिकता शब्द की व्युत्पत्ति अधुना+ठञ+इक् के मेल से हुई है। इसमें 'ता' प्रत्यय है। इसका अर्थ है जो इधर थोड़े समय से चला हो, निकला या

अस्तित्व में आया हो और जिस पर वर्तमान काल की बातों की विशेषताओं की पूरी छाप पड़ी है।"[35]

'बोध' शब्द संस्कृत के 'बुध' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'जानना'[36] बोध शब्द का अर्थ -"भ्रम या अज्ञान का अभाव, ज्ञान, जानकारी, जानने का भाव, तसल्ली, धीरज, संतोष।"[37] अंग्रेजी में बोध के पर्याय हैं- अवेयरनेस (Awareness),कॉन्शजनेस (consciousness) सेन्सिबिलिटी(sensibility)[38]

'बोध' का कोषगत अर्थ है 'ज्ञान'[39] 'बोध' शब्द से तात्पर्य किसी वस्तु, विषय, धारा, व्यवहार का ज्ञान माना जाता है। इस दृश्यमान के पीछे जो अनदेखा सत्य निहित है उसका बोध होना अर्थात् ज्ञान है। बोध स्वयं को और अपने आस-पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध का अर्थ है वर्तमान समय में अस्तित्व में आए ज्ञान को जानना, वर्तमान को महसूस करना।

अगर हम आधुनिकता बोध के अर्थ के साथ उसके स्वरूप की भी बात करें तो पाते हैं कि प्रारंभिक युग में सामाजिक जीवन के विविध आयामों में कोई अलग जागरूकता पैदा नहीं हुई थी। समाज में भाग्यवाद की भावना प्रबल रूप में थी। कहीं किसी भी बात को लेकर मन

---

[35] मानक हिंदी कोश:- रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 174

[36] हिंदी कहानी का विकास एवं युगबोध:- डॉ. मंजुलता सिंह, पृष्ठ 02

[37] हिंदी शब्द सागर:- श्यामसुंदर दास, भाग -9, पृष्ठ 357

[38] हिंदी कहानी का विकास एवं युगबोध:- डॉ. मंजुलता सिंह, पृष्ठ 02

[39] बृहत हिंदी कोश:- स. कलिका प्रसाद, पृष्ठ 825

में न संदेह था, न विद्रोह की भावना। लोगों के मन में ईश्वर ही सर्वशक्तिमान था, ईश्वर के प्रति आस्था तथा अटूट श्रद्धा थी। इसलिए पाप-पुण्य की परिभाषा स्वयं के कर्मों पर निर्धारित थी। इस जीवन पद्धति में तब परिवर्तन आया जब आधुनिक युग का प्रारम्भ हुआ। आधुनिक युग में मनुष्य अपने देशकाल के प्रति, अपने युग और इतिहास के प्रति प्रबुद्ध हुआ। उसे स्वयं के अस्तित्व के संदर्भ में पहचान हुई। स्वातन्त्र्यपूर्व काल में देश की अवस्था दयनीय थी। सामाजिक बुराइयाँ जैसे अन्धविश्वास, छुआछूत, बालविवाह, जातिप्रथा आदि की जड़ें भारतीय जनमानस में गहराई में जमी थीं। देश अंग्रेजों की गुलामी में था लेकिन उन्हीं अंग्रेजों के संपर्क से आधुनिकता का संक्रमण भारत में धीरे-धीरे होने लगा। औद्योगिकता, प्रेस, संचार माध्यम आदि से देश का बड़ा हित हुआ। देश में आधुनिक तन्त्र प्रणाली के कारण बहुत बड़ा परिवर्तन आया। देशवासियों ने बदली परिस्थितियों में पारम्परिक मान्यताओं को ठुकराकर नई दिशा की ओर अग्रसर होना बेहतर माना।

आधुनिकता का उन्मेश यूरोप में बहुत पहले हो चुका था। इसकी शुरुआत 15वीं सदी से 'रेनेसा' (पुनर्जागरण) से मानी जाती है। पुनर्जागरण के दौरान अनेक यूरोपीय देशों में व्यापारिक पूंजीवाद का विकास हो चुका था। इस सम्बन्ध में वेदरमण का मत इस प्रकार है- "यूरोप में आधुनिक युग, आधुनिक होने का एहसास, आधुनिकता की शुरुआत पंद्रहवीं सदी के 'रेनेसा' (पुनर्जागरण) से मानी जाती है। यह अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन आदि आधुनिक यूरोपीय जातियों के निर्माण का काल है। जातीय निर्माण का मतलब है, सामन्ती व्यवस्था के भीतर व्यापारिक पूँजीवाद का विकास। यहीं से लैटिन को पीछे ठेलकर अंग्रेजी, इतालवी, फ्रांसीसी,

जर्मन आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में साहित्य रचना शुरू हुई। यूरोपीय मानवतावाद का जन्म हुआ। आधुनिक समाज की मुख्य पहचान आधुनिक विज्ञान, इसी काल की उपलब्धि है।"[40]

यूरोपीय जातियों में पूँजीवादी संस्कृति ने आधुनिक विज्ञान को जन्म दिया। विज्ञान ने तन्त्रविज्ञान को जन्म दिया। 18वीं सदी तक आते-आते इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति तथा फ्रांस की क्रांति ने धूम मचा दी। विज्ञान एवं तन्त्रविज्ञान के विकास से मानव को पहली बार अपनी बौद्धिक क्षमता का एहसास हुआ। बदलते परिवेश के साथ भौतिक जगत् की सम्भावना एवं विकास की चकाचौंध में मानव-स्वभाव में बदलाव आया। पूँजीवाद के विकास से यूरोपीय देशों के नक़्शे में परिवर्तन आया। समाज, संस्कृति आचार-विचार, भाषा, रहन-सहन आदि में मूलभूत परिवर्तन आया। इसी में विज्ञान के अनेकानेक तन्त्रों का भी आविर्भाव हुआ, जिसके कारण आधुनिक समाज की नींव ठोस रूप में डाली गई। अतः इसका प्रतिबिंब साहित्य में भी दिखाई देने लगा। पुनर्जागरण की प्रक्रिया से मानव की चिन्तन पद्धति में बदलाव आया। रेनेसा का विचारक मनुष्य अब रोमांटिक व्यक्ति हो गया। मानवतावाद व्यक्तिवाद में बदल गया।

अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति तथा फ्रांस की प्रजातांत्रिक बूर्ज्वा क्रांति ने इस युग की नींव डाली। पूंजीवाद के विकास से मनुष्य की पूर्ण चेतना में परिवर्तन हुआ। पूँजीवादी प्रवृतियों ने उत्पादन के नए तकनीकों की खोज-बीन कर डाली। अतः मनुष्य की गति धीमी पड़ गई और देखते-देखते वह मशीन का एक पुर्जा बन गया। इससे पराएपन की समस्या उत्पन्न हुई। आधुनिकता के इस प्रवाह में ईश्वर की सत्ता को मृत घोषित कर दिया गया।

---

[40] समकालीन सृजन:- स. शंभुनाथ, अंक-21, पृष्ठ 99

आधुनिकता के नए परिवेश में संवेदनशून्यता बढ़ गई। मनुष्य जड़, अकेला एवं उदासीन बन गया। व्यक्ति जीवन में व्यर्थता का बोध तथा अस्तित्व शून्यता को महसूस करने लगा। पश्चिम के नए सांस्कृतिक परिवेश में रचनाकारों ने मृत्यु, भय, पीड़ा तथा मूल्यहीनता का अनुभव किया। आज के हिंदी रचनाकारों ने भी बदली हुई परिस्थिति का चित्रण अपने साहित्य में किया है।

इसी समय विज्ञान के अनेकानेक तन्त्रों का भी आविर्भाव हुआ, जिसके कारण आधुनिक समाज की नींव ठोस रूप में डाली गई। आधुनिक तंत्र प्रणाली जैसे मशीन प्रयोग से उत्पादन सम्बन्ध में परिवर्तन आया। विज्ञान ने अनेकानेक भावनाओं को मानवजाति के सम्मुख खोल डाला। मानव मन में विज्ञान ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस तरह मनुष्य का अपनी बौद्धिक क्षमता पर विश्वास बढ़ा। चिंतन-पद्धति में परिवर्तन आने से धीरे-धीरे काल के गर्भ में छिपे हुए रहस्यों का उद्घाटन होने लगा। अनेक विचारक जैसे डार्विन, मार्क्स, फ्रायड, आइंस्टीन आदि ने इस सन्दर्भ में बड़ा सहयोग दिया।

आधुनिक बोध से अभिप्राय:- अगर हम आधुनिक बोध के अभिप्राय की बात करें तो आधुनिक बोध के विश्वसनीय, प्रामाणिक तथा अनुमोदित हो सकने का कारण यह है कि एक तो वास्तविक आधुनिक बोध की धारणा स्वतन्त्र नहीं है, दूसरे वह स्थूल, भौतिक तथा जीवंत है। इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण मानवीय स्थिति से है। "इसका आगमन सभ्यता, समाज, आर्थिक अवस्था, इतिहास क्रम, संस्कृति आदि के रूपों से स्पंदित हुआ है। इसलिए सभ्यता की आधुनिकता, समाज में पूँजीवादी संबंधों का आविर्भाव, आर्थिक विकास में तकनीकी आधुनिकीकरण, इतिहास क्रम में सामंतवादोत्तर क्रांतियों वाला आधुनिक युग, संस्कृति में व्यक्ति का स्वात्म आदि सभी आधुनिक बोध का रूपान्तरण करते हैं। अतः आधुनिक बोध की

धारणा एक महत्तम सांस्कृतिक और ऐतिहासिक उपलब्धि है। इससे किनारा करने पर अकेले व्यक्ति ही नहीं, अपितु महान संस्कृतियाँ तक मर जाती हैं। यह चुनौती है कि हम आधुनिक बोध को भारतीय एवं विश्वात्मक सन्दर्भों में रखकर उसके व्यापक विनायक धर्म का वरण करें।"[41]

आधुनिक भाव-बोध एक व्यापक एवं विस्तृत अर्थ की प्रतीति कराता है। आधुनिक बोध युगीन चेतना का बोध है या केवल उस आधुनिक काल विशेष की कोई मौलिक उपलब्धि। "हर साहित्य के सृजन के मूल में नवीनता विद्यमान होती है और सर्जक इसे इस नवीन चेतना को अपने सृजन में प्रतिफलित करता है। इसलिए पिछले युगों की सापेक्षता में प्रत्येक नए युग का सृजन आधुनिक बोध वाला होता है अथवा आधुनिक बोध प्राचीन अभाव और नवीन आविर्भाव के सन्धि-स्थल से खिलने वाला विवेक पुष्प है।"[42] अपने युग की अपेक्षा सूर, तुलसी, प्रसाद, पंत, निराला, और महादेवी आधुनिक बोध वाले सृजक रहे हैं। आधुनिक बोध को दूसरे अर्थों में हम यूँ भी ले सकते हैं कि प्राचीन की अपेक्षा आधुनिक युग में धर्म में फैले अंधविश्वास को दूर किया, नैतिकता ने यथार्थ, कल्पना ने प्रयोग, भावुकता ने बौद्धिकता, श्रद्धा और आस्था ने विज्ञान और तर्क की जगह ले ली।

विभिन्न आलोचकों ने समयानुसार परिवर्तन परिस्थितियों के ज्ञान को ही आधुनिक बोध माना है। रवीन्द्र कालिया के अनुसार- "मानव की पीड़ा, यंत्रणा, संत्रास का कारण शोषण-मूलक व्यवस्था है न कि उसकी नियति या उसका भाग्य और यहीं से आधुनिकता का सवाल मैं उठाता हूँ और मैं सोचता हूँ कि इन ह्रासशील प्रवृतियों का विरोध ही आधुनिकता है।……..

[41] आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण:- डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृष्ठ 244

[42] नई कविता:- डॉ. जगदीश गुप्त, पृष्ठ 07

आधुनिकता बोध मैं इसे ही मानता हूँ कि जो मनुष्य इन ह्रासशील प्रवृतियों को इसकी पीड़ा को सही अनुमान नहीं दे पाती है बल्कि उसे रूपवाद और कलावाद की तरफ ले जाती है।"[43]

गंगाप्रसाद विमल के आधुनिकता बोध के बारे में अपने विचार हैं। उनके अनुसार "आधुनिकता बोध का आज का हमारा सम्बन्ध, मानव जीवन की संकल्पनाओं, संकुलताओं और संवेदनाओं से है जो कि मुख्य रूप से कहानी विधा में स्पष्ट हुई है। इसलिए यह कहना बहुत अनिवार्य है कि आधुनिकता एक प्रकार का दृष्टिकोण है और यह दृष्टिकोण रेशनल या वैज्ञानिक दृष्टिकोण है।" [44]

डॉ. रमेश कुंतल मेघ आधुनिकता को लेखक का अपना स्तर और उसके कथ्य के स्तर पर खोजने को कहते हैं। "आधुनिक बोध विवेक तथा बुद्धि से नियत है। यह चेतना की ऐतिहासिक (काल) तथा समाज की यथार्थ (नियति) अनुमिति है। यह अंततः चेतनामूलक एवं आनंदमूलक है। यह स्वतन्त्र शक्ति है। इसका लक्ष्य कर्म की स्वतन्त्रता है तथा इसका परिणाम सामाजिक मंगल(शिवतत्व) है। अंततः आधुनिक बोध व्यक्ति की नई चेतना तथा नई धारणा का उन्मेष करता है, जिससे मनुष्य के 'स्वः' के विघटन की समाप्ति तथा आत्म आधिपत्य की सिद्धि हो, यही आधुनिक बोध का स्वरूप है।"[45]

डॉ. भगवान दास वर्मा आधुनिक बोध को सामाजिक धारणा मानते हुए कहते हैं "यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके साथ व्यक्ति के संदर्भ हैं, समाज के संदर्भ हैं, काल विशेष से सम्पृक्त

---

[43] नई कहानी में आधुनिकता बोध:- डॉ. साधना शाह, पृष्ठ 143

[44] वही, पृष्ठ 168

[45] आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण:- डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृष्ठ 246

सामाजिक चेतना के संदर्भ हैं। उसमें सांस्कृतिक और अन्य कई संदर्भ आ जाते हैं, जो एक विशेष देश और उसके सांस्कृतिक विधान के साथ जुड़े हुए होते हैं। इसलिए आधुनिक बोध का तात्पर्य निश्चित परिभाषा में समझना बड़ा मुश्किल हो जाता है। मैं कहूँगा कि कुछ कालिक तत्त्व होते हैं जो समय के साथ जुड़े हुए होते हैं और कुछ परम्परा से चले आते प्रभावशाली तत्त्व होते हैं जो कभी समाप्त नहीं होते।"[46]

आधुनिकता बोध पुराने की जगह नए को लाने की भावना से जुड़ा है। आधुनिकता बोध के कारण परिष्कृत परिमार्जित स्वरूप निर्मित होता है, तथा परम्परागत जड़ रूप विच्छिन्न हो जाता है। इसलिए रमेश कुंतल मेघ ने कहा है कि "आधुनिकता कई प्रकार की हो सकती है। जितने प्रकार के दर्शन एवं इतिहास के एकत्र बोध हैं, उतने ही प्रकार की आधुनिकता है। जितनी विविधता वाली सामाजिक अवस्थाएँ तथा उन्हें परिवर्तित करने की समस्याएँ हैं, उतनी ही व्यापक अथवा संकीर्ण आधुनिकता है।"[47]

आधुनिकता बोध आधुनिक जीवन सन्दर्भों की कोख से जन्मा है, पुष्पित एवं पल्लवित हुआ है। आधुनिकता बोध को वर्षों से निरंतर चली आ रही गतिशील प्रक्रिया के रूप में भी देखा जाता है। वह केवल एक स्थिति और धारणा ही नहीं है, निरंतर नए होते चलने की वृत्ति और वर्तमानता का बोध भी है। इसके स्वरूप में नित नूतन परिवर्तन आते रहते हैं। डॉ. नरेन्द्र मोहन के अनुसार - "आधुनिकता कोई निरपेक्ष धारणा या निरंकुश सिद्धांत नहीं है। यह गतिशील आधुनिक स्थिति है, जिसका स्वभाव ठहरना नहीं, निरन्तर बदलना है।"[48]

---

[46] नई कहानी में आधुनिकता बोध:- डॉ. साधना शाह, पृष्ठ 175

[47] आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण:- डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृष्ठ 317

[48] नव काव्य विशेषांक एक:- डॉ. नरेन्द्र मोहन, पृष्ठ 22

आधुनिकता बोध का सारा चिन्तन और उपक्रम प्राचीन और आधुनिकता के द्वंद्व से उपजी संक्रान्ति का परिणाम है। मानव इतिहास में बीसवीं शताब्दी ऐसे ही संक्रान्ति का काल है और स्वभावतः गहरी चिन्ता का भी। मानव ज्ञान और बोध के लगभग हर क्षेत्र में आशातीत प्रगति हुई है। जब नई और महत्त्वपूर्ण धारणा जन्म लेती है, बोध के नए क्षितिज खुलते हैं तब चिन्तन और कला तथा साहित्य नए आयाम लेते हैं। साहित्य में ज्ञान-विज्ञान की नई-नई अवधारणाओं का सृजन होता है। परम्परा के मूल रूप को छोड़ना व नए को आत्मसात करना उसकी विशेषता है।

मध्ययुगीन मूल्यों में परिवर्तन के कारण सांस्कृतिक परिवर्तन आरम्भ हुआ। यहीं पर आधुनिकता बोध का आरम्भ हो जाता है। परम्परा, संस्कृति, भाषा, राजनीति, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में आधुनिकतावाद व आधुनिक चेतना का संघर्ष चलता रहा। इस संदर्भ में राजी सेठ कहती हैं- "आधुनिकता बोध एक निरंतर ऐतिहासिक वर्तमान है, जो वस्तुओं और स्थितियों के प्रति निष्ठावान है, जिसके मूल में एक ऐसी संघर्षशील दृष्टि है, जो जीवन-मूल्यों के रूढ़ या निष्प्राण हो जाने का विरोध करती है और नए सार्थक प्रतिमानों की स्थापना करना चाहती है।"[49]

आधुनिकता बोध एक सीमा तक स्वयं मूल्य बनकर जड़वादी प्रतिमानों को निर्मूल करती हैं। यह परिवर्तन एक सहज प्रक्रिया में होता है तथा इसी परिवर्तन के भाव-बोध को आधुनिकता बोध कहते हैं। डॉ. रमेश कुंतल मेघ के शब्दों में "समाज को परिवर्तित करने वाले

---

[49] शाश्वत साहित्य और आधुनिकता:- राजी सेठ, पृष्ठ 23

आधुनिकीकरण से तथा समाज संस्कृति की आधुनिकता के संघात से आधुनिकता बोध का आविर्भाव होता है।"[50]

डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार "आधुनिक बोध का अर्थ है जीवन की नवीन चेतना का बोध।"[51] विश्वकोश में कहा गया है कि "अनुपयोगी विश्वासों घिसी-पिटी निरर्थक रीतियों और मनुष्य अथवा समाज के स्वाभाविक विकास में बाधक मान्यताओं से मुक्ति दिलाने वाली वैचारिक अवधारणा का नाम आधुनिकता है।"[52] यह मुक्ति भीतरी मुक्ति थी जिसका उद्देश्य मनुष्य में विवेक पैदा करना था कि वह अपने व्यवहार को पूर्ण रूप से अनुशासित कर सके।

मानव समाज कई वर्षों से विभिन्न प्रकार की मान्यताओं, परम्पराओं, विश्वासों आदि को लेकर चलता आया है। जब मानव समाज में किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह को अपनी ही बनाई गई रुढियों, मान्यताओं, प्रचलित विश्वासों आदि पर संदेह हुआ है या उसे उसने अपने प्रतिकूल पाया है तब समाज में क्रांति की लहर दौड़ी है और उसने इन सबसे मुक्ति पाने के लिए अपनी आवाज़ बुलंद की है। उसने जब अपनी विचारधारा, चिन्तन शक्ति का प्रयोग अपनी वर्तमान परिस्थिति को सुधारने के लिए किया, इसी को ही आधुनिक बोध कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि आधुनिकता में स्वतन्त्र चिन्तन का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव मुक्ति के लिए संघर्ष की आवश्यकता, अकेलापन, अजनबीपन और आत्म निर्वासिन के बौद्धिक विश्लेषण

---

[50] आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण:- डॉ. रमेश कुंतल मेघ, पृष्ठ 301

[51] आज का हिंदी साहित्य:- डॉ. रामदरश मिश्र, पृष्ठ 18

[52] कालसीनस, एलक्स, मौनि- धर्मपाल(स.) मानवमूल्य परक शब्दावाली का विश्वकोश, पृष्ठ 288

आधुनिकता बोध के प्रमुख अंग हैं। उर्मिला मिश्र के अनुसार - "आधुनिकता का जो स्वरूप कल था, वह आज हो, जो आज है, वह कल भी हो यह दावा नहीं किया जा सकता है।"[53]

आधुनिकता के सम्बन्ध में जिस प्रकार लोगों के विचार बदल रहे हैं उसी प्रकार समयानुसार आधुनिकता का स्वयं का स्वरूप भी बदल रहा है।

मनुष्यता के बढ़ते विकास क्रम और समय के सिलसिलेवार क्रम में कई चीज़ों का बोध विकसित होता है। आधुनिकता बोध कैसे विकसित हुआ? यह भी एक महत्वपूर्ण सवाल है। औद्योगिक क्रांति के होने और उसके परिणामस्वरूप जीवन शैली में बदलाव के कारण आधुनिकता बोध का जन्म हुआ, जिसके केंद्र में विकसित चेतना, विज्ञान और तर्क की दुनिया है। इस भाव बोध का जन्म सांस्कृतिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप हुआ। पुरानी संस्कृति का कुछ अंश और नवचेतन के कुछ तत्व आधुनिकता बोध की अवधारणा को यथार्थपरक रूप प्रदान करते हैं। इसलिए इसके सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थ भी हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध एक ऐसी सोच या विचार धारा है जो न केवल हमें रुढियों से मुक्ति दिलाती है बल्कि नई विचार धारा या चिन्तनशक्ति को स्थापित करने की भी प्रेरणा देती है। इससे हमारा साहस और विवेक जागृत होता है और विकास की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त होता है। आधुनिकता बोध की दृष्टि विवेकपूर्ण दृष्टिकोण की स्थापना करती है। अतः आधुनिकता बोध वह सहज, स्वाभाविक और गतिशील प्रक्रिया है जो जीवन को सही संदर्भ में समझने की दृष्टि प्रदान करती है।

---

[53] आधुनिकता और मोहन राकेश:- उर्मिला मिश्र, पृष्ठ 01

1.4 आधुनिक, आधुनिकता, आधुनिकता बोध में अंतर

आधुनिक का सामान्य अर्थ, कालवाचक है, जिससे आज का या वर्तमान का बोध मिलता है। इस दृष्टि से आधुनिक बोध का अर्थ होगा वर्तमान की पहचान। पर आधुनिकता इससे भिन्न है। वह कालवाचक नहीं प्राचीन अथवा मध्यकालीन- बोध से भिन्न एक नई मानसिकता है जिसमें संस्कृति, परम्परा एवं इतिहास का पुनर्मूल्यांकन निहित है। आधुनिकता का दूसरा अर्थ विचारपरक अथवा गुण परक है, जिसको किसी वाद अथवा कालखंड में आबद्ध करने की चेष्टा निरर्थक है। यह बोध वर्तमान से बँधा हुआ भी नहीं है और कटा हुआ भी। क्योंकि वर्तमान में जीवित प्रत्येक कलाकार आधुनिक नहीं हो सकता। रत्नाकर और गुरुदत्त आधुनिक युग के कलाकार होते हुए भी आधुनिक नहीं है। महात्मा बुद्ध तथा कबीर आधुनिक युग के न होते हुए भी आधुनिक थे। यही कारण है कि आधुनिकता गत्यात्मक बोध के कारण कालखंड से मुक्त है। आधुनिकता एक मानसिकता है जो स्थितियों में प्रतिफलित होती है, "विकासशील तत्वों के अनुरूप अपने आपको परिष्कृत करके चलना ही आधुनिकता का प्रथम लक्षण है।"[54] वह एक गत्यात्मक सत्य है भविष्य में प्रक्षिप्त दृष्टि है। आधुनिक शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 19वीं शताब्दी में समाज विज्ञान में हुआ, जबकि आधुनिकता का आरम्भिक काल 18वीं शताब्दी का मध्य माना जाता है। वास्तव में 18वीं शताब्दी के दौरान विज्ञान और तर्क की उन्नति के परिणामस्वरूप एक ऐसा भौतिकवादिक तार्किक वातावरण पनपना आरम्भ हो गया था, जिसने मध्ययुगीन धार्मिक अंधविश्वास और आस्थाओं पर तीव्र प्रहार किया था, जिससे समाज के विभिन्न क्षेत्रों में आमूलचूल परिवर्तन आ गया था, उस सारी सामाजिक स्थिति को ही

[54] हिंदी नवलेखन:- डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 266

'आधुनिक समाज' या आधुनिक कहा गया। उस युग में विज्ञान और तर्क पर आधारित लहरें और आंदोलन उठ रहे थे, जो प्राचीन आस्थाओं एवं मूल्यों का विरोध कर रहे थे, जिसने आधुनिकता को स्थापित करने में मदद की थी, जिसे आधुनिकवाद कहा जाता है।

आधुनिकता आधुनिक प्रक्रिया की गतिशीलता का प्रतिफलन तत्व है। मध्यकाल से भिन्न या नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण की सूचना देनेवाली सारी गतिविधियाँ आधुनिक कही जाती हैं। इस प्रकार आधुनिक युग की आधुनिक स्थितियों व परिस्थितियों के बीच जीते मनुष्य में जो नई दृष्टि उभरती है उसे आधुनिकता बोध के तहत हम देखते हैं। आधुनिकता बोध विभिन्न प्रभावों से उत्पन्न एक नवीन चेतना है, जो एक सतत् विकासमान अवधारणा है। अतः आधुनिकता बोध वह चिन्तन विधि, नवीन मानवीयता एवं यथार्थवादी दृष्टि है जो युग की वास्तविकता को दायित्वपूर्ण स्वीकृति प्रदान करती है। आधुनिकता, आधुनिक-बोध, युग-बोध आदि नए साहित्य के संदर्भ में सर्वाधिक चर्चित शब्द हैं। भारतीय संदर्भ में आधुनिक बोध को बहुत समय तक पश्चिमी जीवन पद्धति का ही पर्याय समझा जाता रहा है।

जैसा कि हम पहले ही आधुनिक, आधुनिकता एवं आधुनिकता बोध के अर्थ एवं परिभाषाओं पर बात कर चुके हैं। 'आधुनिक-बोध' में 'आधुनिक' और 'बोध' दोनों व्याख्या सापेक्ष हैं। 'बोध' शब्द इन्द्रियानुभूति के माध्यम से किसी वस्तु की स्थिति का परिज्ञान कराता है, जिसमें समय सापेक्षता अधिक रहती है। आधुनिक बोध आधुनिकता से उपजा है। आधुनिक बोध में यथार्थ का बिंब अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अपनी समाज व्यवस्था से दुःखी होकर मनुष्य विद्रोही हो गया है और इससे वह भ्रान्ति के संसार में भटक गया है तथा उसके यथार्थ की पकड़

उससे अलग हो गई है। इसे ही आधुनिक बोध का आरम्भ कहा गया। उदा. "आधुनिकता का सामान्य अर्थ कालवाचक है इस अर्थ में आधुनिक बोध का अर्थ होगा वर्तमान का बोध।"[55]

अर्थात्, इस तरह परम्परा से प्राप्त प्राचीन और मध्यकालीन बोध से भिन्न नवीन बोध का वाचक है, आधुनिक बोध। भारतीय संदर्भ में इस आधुनिक बोध को उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्ध तथा बीसवीं सदी का प्रारंभिक दशक सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक बोध के दो रूप हैं, एक बोध अमानवीय है और दूसरा मानवीय। हमारे समाज में यह कहा गया है कि आधुनिक बोध आत्म-पराएपन का प्रतीक है। जिसका अर्थ यह है कि व्यक्ति अपने भीतर अलगाव का अनुभव करता है। वस्तुत: आधुनिक बोध की अवधारणा अपने आप में सम्पूर्ण मानवीय स्थिति से जुड़ी है। यह सभ्यता और संस्कृति का जीवंत रूप है। आधुनिक बोध में विवेक और बुद्धि का महत्त्व है। वह भावुकता पर आधारित नहीं है उसमें सूक्ष्म संवेदना है। इस बोध में आनंद और करुणा दोनों है। आधुनिक बोध एक द्वंद्वात्मक स्थिति है जिसमें अमूर्त और मूर्त का तथा मानसिक और भौतिक का संघर्ष होता रहता है। आधुनिक बोध ने जीवित मानव को तो प्रतिष्ठित कर दिया पर उसने सामाजिक व्यवस्थाओं में एक ऐसे मनुष्य को जन्म दिया जिसका कोई व्यक्तित्व ही नहीं है। अतः व्यक्तित्वविहीन मनुष्य को ही अमानवीय कहा गया है जो अपने आप से अलगाव का अनुभव करता है।

इस प्रकार आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकता बोध के अंतर को उसके अर्थ एवं परिभाषाओं के माध्यम से भी भली-भांति समझा जा सकता है। अगर आधुनिकता बोध को देखें तो निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध एक ऐसी सोच या विचारधारा है जो न केवल हमें रूढियों से मुक्ति दिलाती है बल्कि नई विचारधारा या चिन्तनशक्ति को

---

[55] आधुनिकता बोध एवं मोहन राकेश का कथा साहित्य:- राजनारायण शुक्ल, बी. आर., पृष्ठ 16

स्थापित करने की भी प्रेरणा देती है। हम जानते हैं कि 'आधुनिकता' को 'आधुनिक' ही आधार प्रदान करता है और 'आधुनिक' से होकर ही आधुनिकता और आधुनिकता बोध तक पहुँचा जा सकता है। तो कुछ मायने में अंतर होने के साथ-साथ ये सभी आपस में पर्याय भी माने जाते हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि विभिन्न शब्दकोशों, आलोचकों और विद्वानों के अनुसार 'आधुनिक' शब्द की परिभाषा भिन्न-भिन्न ठहरती है, जो अपने अर्थ-विस्तार में कई आयामों को समाहित किये हुए है; यथा कालवाची सन्दर्भ और समसामयिकता के अर्थ में। उपर्युक्त सभी परिभाषाओं और अर्थों के अनुसार, आधुनिक का अर्थ केवल 'समसामयिकता' से नहीं लेना चाहिए अपितु विचारपरकता और मूल्यबोध से भी ग्रहण करना चाहिए।

ध्यातव्य है कि 'आधुनिक' शब्द का अर्थ केवल शब्दकोशों तक सीमित न हो, इसलिए उसके अर्थों को कई सन्दर्भों जैसे सामाजिकता, कला के भिन्न-भिन्न रूप और प्रगतिशीलता इत्यादि में भी समझा जाना आवश्यक है। इसी सन्दर्भ में पश्चिम में 'आधुनिक' की परिभाषा सामाजिक, प्रगतिशील और कलात्मक रूप में दी गई है। उपर्युक्त विद्वानों के विचारों के केंद्र में मानव जीवन के विकासक्रम की व्याख्या है, जो अपने पूर्ववर्ती समय से तो भिन्न है किंतु प्रगतिशीलता की अनुगामी है।

दृष्टि वह है जिसमें एकरूपता नहीं हो सकती। यही दृष्टि- वैविध्य आलोचकों व विद्वानों को एक अलग नज़र देता है, भाषायी ताकत देता है, जिससे वह अपने विचारों की दुनिया तैयार करते है। यहीं से शब्दों को पहले अर्थ फिर विधा के रूप में समझा गया। जैसे कहानी का पहले एक निश्चित अर्थ था, फिर उसमें कई तत्व समाहित हुए। इसी प्रकार नए-नए साहित्यिक

तत्वों के सम्मिश्रण से नई विधाएँ सामने आयी। उपर्युक्त विचारकों में किसी ने आधुनिकता को कालवाची रूप में देखा तो किसी ने मानवता के सन्दर्भ में, किसी ने आधुनिकीकरण के सन्दर्भ में तो किसी ने संघर्ष चेतना के रूप में। इस प्रकार आधुनिकता सत्य को ग्रहण करने की एक यथार्थवादी दृष्टि है। आधुनिकता बाह्य आरोपित वस्तु नहीं होती है। उसमें देशकाल की अनुभूति का समावेश होता है। आधुनिक साहित्य रचयिता युगीन परिवेश का सीधा साक्षात्कार करता है और बदलते हुए सन्दर्भों को ग्रहण करते हुए रचना करता है। आधुनिकता देश काल सापेक्ष्य होते हुए भी, यह समकालीनता के बंधन में नहीं बांधी जा सकती। आधुनिकता अतीत के व्यतीत सन्दर्भों को ठुकराकर उसे वर्तमान की प्रासंगिकता से जोड़ती हुई भविष्य में सम्भाव्य बनाने का प्रयत्न करती है।

मनुष्यता के बढ़ते विकास क्रम और समय के सिलसिलेवार क्रम में कई चीज़ों का बोध विकसित होता है। आधुनिकता बोध कैसे विकसित हुआ? यह भी एक महत्वपूर्ण सवाल है। औद्योगिक क्रांति के होने और उसके परिणामस्वरूप जीवन शैली में बदलाव के कारण आधुनिकता बोध का जन्म हुआ, जिसके केंद्र में विकसित चेतना, विज्ञान और तर्क की दुनिया है। इस भाव बोध का जन्म सांस्कृतिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप हुआ। पुरानी संस्कृति का कुछ अंश और नवचेतन के कुछ तत्व आधुनिकता बोध की अवधारणा को यथार्थपरक रूप प्रदान करते हैं। इसलिए इसके सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थ भी हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध एक ऐसी सोच या विचार धारा है जो न केवल हमें रुढियों से मुक्ति दिलाती है बल्कि नई विचार धारा या चिन्तनशक्ति को स्थापित करने की भी प्रेरणा देती है। इससे हमारा साहस और विवेक जागृत होता है और विकास की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त होता है। आधुनिकता बोध की दृष्टि विवेकपूर्ण दृष्टिकोण की स्थापना करती है। अतः आधुनिकता बोध वह सहज, स्वाभाविक और गतिशील प्रक्रिया है जो जीवन को सही संदर्भ में समझने की दृष्टि प्रदान करती है।

इस प्रकार आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकता बोध के अंतर को उसके अर्थ एवं परिभाषाओं के माध्यम से भी भली-भांति समझा जा सकता है। अगर आधुनिकता बोध को देखें तो कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध एक ऐसी सोच या विचारधारा है जो न केवल हमें रूढियों से मुक्ति दिलाती है बल्कि नई विचारधारा या चिन्तनशक्ति को स्थापित करने की भी प्रेरणा देती है। हम जानते हैं कि 'आधुनिकता' को 'आधुनिक' ही आधार प्रदान करता है और 'आधुनिक' से होकर ही आधुनिकता और आधुनिकता बोध तक पहुँचा जा सकता है। तो कुछ मायने में अंतर होने के साथ-साथ ये सभी आपस में पर्याय भी माने जाते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहें तो इस अध्याय में आधुनिकता को चार भागों में विभाजित करके उसको संक्षेप में बताने का प्रयास किया गया है। अपने भीतर के अनुभावों को वक़्त के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखना ही आधुनिकता है। आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकता बोध आदि शब्द आधुनिकता के पर्याय रूप हैं। आधुनिकता की व्याप्ति विज्ञान, धर्म, इतिहास, सामयिकता और नवीनता के साथ जुड़ी है क्योंकि हर युग में जीवन दृष्टि परिवेश से प्रभावित होती है। आधुनिकता की संकल्पना और स्वरुप विवादास्पद है। आधुनिकता अपने आप में गत्यात्मक, जटिल, गतिशील, कालातिक्रमिक, सर्वांग, क्रियाशील सृजनात्मक, विद्रोहात्मक, सार्वभौमिक एवं कालजयी चेतना है, जिसमें समाज संचलन की व्यवस्था जटिल होती है। उस प्रक्रिया से साहित्य जुड़कर अपना अर्थ प्राप्त करता है। आधुनिकता नवीनीकृत बोध होने के कारण इसमें तर्क, परीक्षण एवं विवेक महत्त्वपूर्ण होता है। वह अपने आप में मूल्य नहीं है। अस्तित्ववादी विचारधारा ने अकेला, संत्रस्त, अलगावित एवं पीड़ामय बनाया है, जिसे हम आधुनिकता कहते हैं वह आज के संदर्भ में संकटबोध है। क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से मूल्य संक्रमण नज़र आ रहा है। आधुनिकता में धर्म एवं संस्कृति के प्रति निषेध का कारण वैज्ञानिक चेतना है। विज्ञान आधुनिकता नहीं है किंतु वह आधुनिकता का अवसर अवश्य सिद्ध हुआ है।

द्वितीय अध्याय

उषा प्रियंवदा: व्यक्तित्व एवं रचना संसार

1.1 उषा प्रियंवदा का व्यक्तित्व एवं जीवन

साहित्यकार का व्यक्तित्व उसकी साहित्यिक रचनाओं में समाविष्ट होता है, क्योंकि हम जानते हैं कि साहित्य में साहित्यकार के व्यक्तित्व की ही कलात्मक रूप में अभिव्यक्ति होती है। साहित्यकार जिन पारिवारिक वातावरण, सामाजिक परिस्थितियों, राजनीतिक तथ्यों तथा आर्थिक समस्याओं में अपना जीवन व्यतीत करता है, वही उसके साहित्य का आधार बनता है।

आज हिंदी साहित्यकारों ने हिंदी की सभी विधाओं में अपनी कलम का जादू दिखाया है। इन साहित्यकारों का लेखन ही हमें उनके लेखन के विशेष अध्ययन की ओर प्रेरित करता है। आज विश्व में लगभग सभी जगह हिंदी साहित्य का लेखन हो रहा है, और महिला लेखिकाएँ भी अपनी सशक्त कलम के साथ मौजूद हैं। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि किसी साहित्यकार के साहित्य की विशेषताओं को जानने से पूर्व उसके जन्म से लेकर अंत तक की समस्त परिस्थितियों का हमें ज्ञान हो। इसी कारण साहित्यिक विवेचना से पूर्व उषा जी का व्यक्तित्व परिचय अपेक्षित है।

उषा प्रियंवदा हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण एवं शीर्ष लेखिका हैं। इन्हें साठोत्तरी महिला लेखिका के रूप में भी जाना जाता है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि साहित्य के प्रति दृष्टिकोण का पुनः बदलाव इनके समय से आरम्भ हुआ। उषा जी ने जिस पारिवारिक परिवेश का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है, वह अपना-सा लगता है। उन्होंने अपने साहित्य के द्वारा यह दिखाने की कोशिश की है कि भले ही समाज का विकास हुआ है किन्तु मनुष्यों का आपसी सम्बन्ध टूट ही रहा है। संबंधों के इसी टूटन का सजीव एवं यथार्थ चित्रण उन्होंने अपनी

रचनाओं में किया है। उषा प्रियंवदा की गिनती हिंदी के उन साहित्यकारों में होती है, जिन्होंने आधुनिक जीवन की ऊब, घुटन, छटपटाहट और अकेलेपन को बड़ी ईमानदारी तथा बारीकी से अपने साहित्य में व्यक्त किया है। उन्होंने अपने साहित्य में भावुकता को अधिक महत्त्व दिया है।

डॉ. गोवर्धन सिंह शेखावत ने उषा जी के बारे में लिखा है "उषा प्रियंवदा ने मध्यम वर्ग के पारिवारिक यथार्थ एवं उसकी समस्याओं को सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। सामाजिक विषमता, पति -पत्नी के सम्बन्ध और प्रेम के विविध पक्षों का उद्घाटन उनकी कहानियों में हुआ है। उनकी कहानियों में संघर्षशीलता एवं टूटते परिवारों की मार्मिक कथा है।"[56]

उषा प्रियंवदा का जन्म 24 दिसम्बर 1930 को कानपुर के सुसंस्कृत संयुक्त परिवार में हुआ। उनके परिवार में माँ प्रियंवदा देवी, बड़ी बहनें कमला और कामिनी, बड़े भाई शिब्बन लाल सक्सेना और होरीलाल सक्सेना, बड़ी दादी गुलाब देवी, छोटी दादी रमा देवी आदि सदस्य थे। संयुक्त परिवार होने के कारण उनके घर में हमेशा चहल- पहल रहती थी। वे कायस्थ बिरदारी की हैं। उनके परिवार का दृष्टिकोण लड़कियों की पढ़ाई के प्रति उदात्त था। उन्होंने बचपन से ही पढ़ाई के प्रति रुचि दिखाई। उनकी स्कूली शिक्षा कानपुर और इलाहाबाद में हुई। शुरू से ही उन्हें शिक्षा के अनुरूप वातावरण मिला। जब वह तीन साल की थीं तभी उनके पिता का देहान्त हो गया था। पिता की मृत्यु के बाद संयुक्त परिवार टूट गया। उस घर में, वे छह वर्ष तक रहीं परन्तु जब उषा जी अपनी माँ के साथ छुट्टियों में फतेहगढ़ जाने लगीं, तभी उनकी प्रतिभा जागृत हुई। उस समय उनके दादा शिब्बन लाल 1942 के क्रांति आंदोलन के

[56] नई कहानी: उपलब्धि और सीमाएँ - डॉ. गोवर्धन सिंह शेखावत, पृष्ठ 311

दौरान वर्षों से जेल में थे। वे और उनकी माँ कानपुर लौट सम्मिलित परिवार में रहने लगीं और वहीं रहकर उन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूरी की। छठी कक्षा पास कर उन्होंने अपनी छुट्टी ननिहाल में बिताई। ननिहाल जाना उन्हें अप्रिय लगता था क्योंकि वहाँ सब पुरुषों और बालकों के बाद स्त्रियों को भोजन मिलता था। हर चीज़ में पुरुष ही आगे रहते थे। उन्हें दुःख था कि ममेरे भाइयों के कार्य एवं गतिविधियों से उन्हें अलग क्यों रखा जाता है। भगवतीचरण वर्मा आदि की पुस्तकें उनके हाथ लगीं, तो जैसे उन्हें एक अलभ्य कोष मिल गया"[57] उन उपन्यासों में उन्हें पहली बार अनुभव हुआ कि स्त्री जाति की परवशता उसे समाज से मिली है। उनके अंदर जो विद्रोह और आक्रोश के बिंदु थे, धीरे-धीरे प्रकट होने लगे फिर भी उनका दृष्टिकोण सीमित ही रहा। उनकी पढ़ाई में विशेष रुचि थी। घर में छोटी दादी का बोल-बाला था। उन्होंने अपनी बेटी को बी.ए. पढाया था। यह उस समय कानपुर के कायस्थ बिरादरी के लिए क्रांतिकारी घटना थी। इसका लाभ उषा प्रियंवदा को भी मिला। अपने ममेरे भाई-बहनों को बचपन से ही कहानियाँ सुनाने में उन्हें आनंद आता था। वे हमेशा सोचतीं कि कहानी कहाँ से उत्पन्न होती है और कहाँ खो जाती है। वे रोज़-रोज़ नई कहानियाँ गढ़ती जातीं जैसे उनका अंत ही न था। इसी सोच के साथ वे स्कूल की पत्रिकाओं में कहानियाँ भी लिखने लगीं। उषा जी की पहली कहानी 'बालिका' विद्यालय की स्कूल पत्रिका में छपी थी जिसमें दुःख एवं उदासीनता का भाव था, तब वे आठवीं या नौवीं कक्षा में पढ़ती थीं। उनकी प्रारम्भिक कहानियों में अधिकतर स्त्री पात्र समाज और परिस्थितियों से उबर नहीं पाईं। उनमें एक प्रकार की हताशा भरी स्वीकृति थी। यह उषा जी के लेखन का प्रथम चरण था। वे निरंतर लिखती रहीं, पर उन्होंने इसको गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया। वह बिना कॉपी रखे कहानियों को छपने के लिए भेज दिया करती थीं। इस कारण उनकी आरंभिक कहानियों में से पचास प्रतिशत

[57] उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में व्यक्त नारी चेतना- शारदा बी. पटेल, पृष्ठ 08

कहानियाँ उपलब्ध नहीं हैं। जब उषा जी आगे की पढ़ाई के लिए कॉलेज गईं तो वह छात्रावास में रहने लगीं और तब उनके अंदर एक कहानीकार ने जन्म लिया। वे कहती हैं कि " मेंरे लेखन का प्रथम सोपान था उस समय की जनप्रिय पत्रिका 'सरिता' में प्रकाशित होने का, तब तक मैं कॉलेज में आ चुकी थी; और छात्रावास में रहने लगी थी। जब भी 'सरिता' का नया अंक आता, जिसमें मेरी कहानी होती तो छात्रावास में उल्लास की एक हिलोर-सी उठती, पत्रिका के लिए छीना-झपटी होती पर उस भोलेपन और बेखबरी की अवस्था में मेरे लिए वही क्षण प्रतीक्षित रहता जबकि 'सरिता' से बीस रुपए कहानी के पारिश्रमिक के रूप में मिलते।"[58] इसी बीच उनके दादा जेल से छूट कर सांसद हो गए। तब सारा परिवेश ही बदल गया। उषा प्रियंवदा दादा की प्रेरणा से उच्च शिक्षा के लिए इलाहाबाद चली गईं। अंग्रेज़ी विषय प्रिय होने के कारण इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में पी.एच.डी भी की। और वहाँ जा कर उन्हें ये एहसास हुआ "जैसे एक मछली, जो अपनी संकुचित गढ़ैया में ही संतुष्ट थी, अचानक अथाह जलराशि पा गई हो।"[59] नये परिवेश व शिक्षा सुविधाओं के साथ-साथ उन्हें कवियों, लेखकों, तथा समीक्षकों का साहचर्य प्राप्त हुआ। 'फ़िराक', हरिवंशराय बच्चन, सुमित्रा नंदन पंत और श्रीपतराय जैसे लेखकों व सम्पादकों से उनका मिलना-जुलना होने लगा। उषा प्रियंवदा को प्रकृति के प्रति लगाव पंत जी के संपर्क में आने से हुआ। उषा जी की वाचालता, हाज़िर जवाबी और विनोद प्रियता उन्हीं बैठकों का परिणाम है। नये परिवेश के कारण धीरे-धीरे उनमें मानसिक परिपक्वता आने लगीं। वहीं रहकर उन्होंने 'पूर्ति' नामक कहानी लिखी जो 'कल्पना' पत्रिका में प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने उषा के साथ माँ का नाम प्रियंवदा अपना लिया था।

---

[58] सम्पूर्ण कहानियाँ (भूमिका) - उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 02

[59] वही, भूमिका

वे कहती हैं कि "मेरी पहली पहचान 'कल्पना' में प्रकाशित हुई कहानी 'पूर्ति' थी, जिसमें अपने हल्के-फुल्के नाम 'उषा' के साथ माँ का नाम 'प्रियंवदा' जोड़ लिया था। 'उषा प्रियंवदा' में एक ललक थी, एक लौ थी लिखने की, और कुछ लिखने की।"[60]

तब से उनकी पहचान साहित्य जगत् में उषा प्रियंवदा नाम से ही है। उषा जी में अच्छा लिखने की ललक थी। इलाहाबाद प्रवास के दौरान उन्होंने 'वापसी' कहानी लिखी। इस कहानी में पारिवारिक विघटन के साथ-साथ अर्थ केंद्रित समाज के खोखले यथार्थ का चित्रण किया गया है। उषा प्रियंवदा की ये सबसे चर्चित कहानी है।

उषा प्रियंवदा ने तीन साल दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज में अध्यापन कार्य किया है। उसके बाद उन्होंने इलाहबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापन का कार्य भी किया। प्राध्यापन के पश्चात उषा प्रियंवदा फुल ब्राइट स्कॉलरशिप पर अमेरिका चली गईं, जहाँ ब्लूमिंगटन इण्डियाना में दो वर्ष पोस्ट डॉक्टरल स्टडी की। उसके बाद विस्कांसिन विश्वविद्यालय मेडिसन में दक्षिणेशियाई विभाग की प्रोफ़ेसर भी रही हैं। 2002 में अवकाश लेकर अब पूरा समय लेखन, अध्ययन और भ्रमण में बिता रही हैं।

उनके भारत से अमेरिका जाने के एक वर्ष बाद 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'फिर वसंत आया' किताबें प्रकाशित हुईं। उस समय वह इंडियाना विश्वविद्यालय में अमरीकन साहित्य पढ़ रही थीं। वह विदेश में रह कर भी अपनी माँ तथा दादा के उपदेश और भारतीय संस्कृति को कभी नहीं भूल पाईं। वहाँ दो साल पढ़ाई के बाद विस्कांसिन विश्वविद्यालय ने उन्हें एक साल की नौकरी का ऑफर दिया, जिसको उन्होंने

---

[60] वही, भूमिका

स्वीकार कर लिया। मेंडिसन में उन्हें 'इण्डियन स्टडी' पढ़ाने का भार भी मिला। वहीं रहते हुए उन्होंने दो विवाह किये। पहला विवाह किम नेल्सन के संग हुआ और बाद में उन्होंने हावर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर प्रशांत से विवाह कर लिया और अब कई दशकों से अमेरिका में ही रह रही हैं।

विदेश में रहते हुए उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति को नज़दीक से देखा है। एक भावुक महिला होने के कारण उन्हें पाश्चात्य संस्कृति ने प्रभावित किया और वे इस संस्कृति से जुड़ गईं। वहीं रह कर उन्होंने दोनों संस्कृतियों तथा वर्तमान मानव के टूटते संबंधों का अध्ययन किया। जन्मभूमि से अलगाव रहने के कारण भारत के प्रति उनका अलगाव बढ़ता गया। यही अलगाव उषा जी के व्यक्तित्व का हिस्सा बन गया और लेखन का अभिन्न अंग बन गया। उन्होंने स्वयं लिखा है "जहाँ मैं रहती हूँ उस नगर में चार सौ तेइस भारतीय हैं। संगीत, समारोह, मुशायरे, भोजन, हिंदी फिल्में, चाय-पार्टियों में निमंत्रण मिलते हैं और प्रायः सम्मिलित भी होती हूँ, पर उस सबके बावजूद भी जैसे उनके जीवन की परिधि पर हूँ, कभी मध्य में नहीं। भारत लौटने पर भी ऐसा लगता है, इसलिए वह अलगाव शायद मेरे व्यक्तित्व और लेखन का अभिन्न अंग बनता जा रहा है।"[61]

उषा प्रियंवदा की कथा यात्रा समाप्त नहीं हुई है। वह आज भी जारी हैं। उन्होंने 'सम्पूर्ण कहानियाँ' की भूमिका में लिखा है "मुझे लगता है कि मेरी कथा-यात्रा अभी समाप्त नहीं हुई है। मेरे अंदर अभी भी तमाम चरित्र, घटनाएँ, अनुभव शब्दों में अभिव्यक्ति पाने के लिए आतुर

---

[61] ज्ञानोदय: मेरी सृजन प्रक्रिया- उषा प्रियंवदा, अंक 2, पृष्ठ 43

हैं। पर आगे क्या लिखा जाएगा, यह तो मेरे अंदर की अदृश्य सृजनकर्त्री के हाथों में हैं जिसके आगे मैं बेबस हूँ।"[62]

1.2 उषा प्रियंवदा का रचना संसार

रचनाकार के व्यक्तित्व विकास के अनुरूप उसकी रचनाओं में भी विकास दृष्टव्य है। उषा प्रियंवदा की रचनाएँ उनके रचना व्यक्तित्व की प्रामाणिक साक्ष्य हैं। कृति पर कृतिकार के व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है। हडसन कहते हैं "प्रत्येक महान कलाकार एक नये तत्व को ले कर आता है जो वह स्वयं है।"[63]

परिचित समाजिक जीवन से इकट्ठी हुई सामग्री पर रचनाकार की रचना दृष्टि उतना अधिक निर्भर नहीं करती जितना उसके अनुभवों पर निर्भर करती है। अतः "अपनी रचना-प्रक्रिया के दौरान जिस तीव्रता से रचनाकार गुज़रता है, वह उसका स्वयं का एक अनुभव है, जो सबसे अच्छा और प्रामाणिक है।"[64]

हिंदी कथा साहित्य में उषा प्रियंवदा ने अपनी एक विशिष्ट छवि बनाई है। उषा जी के उपन्यासों में महानगरीय जीवन के संत्रास और विदेश में बसे पति के साथ जीवन यापन करने वाली भारतीय लड़की के सुख-दुख को बड़ी गहराई से महसूस किया गया है। उनके अमेरिका प्रवास के सूक्ष्म निरीक्षण ने इन चित्रों को सजीव बनाया है। आज का युगीन ययार्थ भी यही है कि ज्यों-ज्यों आदमी के पास भौतिक सुख सुविधाएँ बढ़ रही हैं, त्यों-त्यों उनके मन का सुख

---

62 सम्पूर्ण कहानियाँ(भूमिका) - उषा प्रियंवदा, नई दिल्ली

63 An Introduction to the study of literature- William Henry Hudson, page 15

64 समकालीन कहानी का रचना विधान- डॉ. गंगाप्रसाद विमल, पृष्ठ 66

उसकी आत्मा की शांति विलीन होती जा रही है। आदमी की यही उदासी, ऊब, अकेलापन और घुटन संवेदनशील कथा लेखिका उषा जी की रचनाओं में बड़ी भाव प्रवण शैली में व्यक्त हुई है। उनके कथा साहित्य में पाश्चात्य प्रभाव भी साथ-साथ चलता है। वे अपनी रचनाओं की सृजन प्रक्रिया के बारे में कहती हैं कि "मैं यह भी नहीं जानती कि जो कुछ लिखा जा रहा है, वह पूरा भी होगा, या 'अधूरे प्रारम्भ' या 'नोट्स फॉर अ न्यू नॉवेल' या 'गुड बिगिनिंग' नामक फाइलों में बंद होकर बरसों उपेक्षित पड़ा रहेगा।"[65]

उनकी रचानाओं में एक ओर आधुनिकता का प्रबल स्वर मिलता है तो दूसरी ओर उनमें चित्रित प्रसंगों तथा संवेदनाओं के साथ हर एक वर्ग का पाठक तादात्म्य का अनुभव करता है। उन्होंने सात उपन्यासों की रचना की है जिनका संक्षिप्त परिचय दृष्टव्य है।

1. पचपन खम्भे लाल दीवारें (1961)

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उनका पहला उपन्यास है। इसमें सुषमा नामक भारतीय नारी की सामाजिक, आर्थिक विवशताओं से जन्मी मानसिक यंत्रणा का बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। छात्रावास के पचपन खम्भे और लाल दीवारें उन परिस्थितियों के प्रतीक हैं, जिसमें रहकर सुषमा को ऊब तथा घुटन का तीखा एहसास होता है। उन परिस्थितियों के बीच जीना ही उसकी नियति है। आधुनिक जीवन की यह एक बड़ी विडंबना है कि जो हम नहीं चाहते वही करने को विवश हो जाते हैं। लेखिका ने इस स्थिति को बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित किया है।

---

[65] ज्ञानोदय: मेरी सृजन प्रक्रिया- उषा प्रियंवदा, अंक 2, पृष्ठ 42

लेखिका ने नारी शोषण के नए आयाम को यहाँ उद्घाटित किया है। निवृत्त अपाहिज पिता के परिवार में यदि लड़की बड़ी है, तो बेरोज़गार पिता के परिवार का पालन पोषण लड़की नौकरी करके करती है। कमाने वाली लड़की की शादी की चिंता परिवार वाले छोड़ देते हैं। सुषमा हॉस्टल वार्डन है। अध्यापिका के पद पर भी कार्यरत है। अपाहिज पिता की पुत्री पर परिवार का पूर्ण उत्तरदायित्व है। वह नील से प्यार करती है। परिवार के प्रति प्रतिबद्धता के कारण वह अपने निजी सुख का त्याग करती है। आधुनिक अध्यापिका होने के अतिरिक्त उसके चारों ओर दीवारें हैं; सामाजिक दायित्व की, मानसिक कष्ट की, पद की, गरिमा की, परिवार प्रतिबद्धता की। वह निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र है, फिर भी भारतीय संस्कारों का प्रभाव नायिका में दृष्टिगत होता है। नायिका ने अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं का त्याग अपने परिवार के दायित्व के लिए किया है। डॉ. उषा यादव के अनुसार "इसकी कथा नायिका सुषमा आज के परिवर्तित परिवेश में पारिवारिक उत्तरदायित्वों का वहन करती, संघर्षों के उत्ताप से पल-पल झुलसती और बदली सामाजिक मान्यताओं के तहत एक नई प्रेमवृति का पोषण करती दिखाई देती है।"[66]

यह उपन्यास अंतर्मुखी, कुंठित, स्वतंत्रता और कर्त्तव्य के बीच छटपटाती भीरु सुषमा की करुण कहानी है। पक्षाघात से अशक्त पिता की वह सबसे बड़ी संतान है। पूरे परिवार के पालन का एकमात्र साधन वह है। घर, माँ-बाप तथा भाई-बहनों के लालन पालन एवं शिक्षा की चिंता से उसके यौवन के वर्ष बीतते चले जाते हैं और साथ ही टूटते जाते हैं उसके सुहावने सपने। कभी अपने माँ-बाप को तो कभी परिस्थितियों को दोष देती वह लड़कियों के हॉस्टल में वार्डन के पद को संभालती है। नील अपने हृदय का सच्चा प्यार और उसके परिवार की सारी

---

[66] हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना- डॉ. उषा यादव, पृष्ठ 77

जिम्मेदारियों को उठाने के अश्वासन के साथ उस से विवाह का प्रस्ताव करता है। किंतु भीरु सुषमा अपने में परिस्थितियों से लड़ने की शक्ति नहीं संजो पाती और आत्मपीड़न से जलती रहती है। लोगों के उँगली उठाने तथा नौकरी छूट जाने के भय से वह नील से अलग होना चाहती है। अंत तक उसके भीतर का तूफान उसे उन्हीं पचपन खम्भों और लाल दीवारों वाले हॉस्टल में टिके रहने को बाध्य करता है। वह अपने मन को समझाती है "जीवन में बहुत महत्वपूर्ण काम हैं, सिर्फ विवाह ही तो नहीं।"[67]

2. रुकोगी नहीं राधिका (1968)

यह उनका 139 पृष्ठों का एक लघु उपन्यास है। उषा जी का कथा संसार भारत और विदेश की जीवन शैली और सांस्कृतिक खिंचाव के द्वंद्व के बीच से आकार लेता है। यह उपन्यास इसी कारण कहीं ज़्यादा ठोस और प्रामाणिक लगता है। इस उपन्यास में भारतीय और पाश्चात्य परिवेश को उजागर किया गया है। पश्चिमी देशों में कोई भी महिला किसी के साथ भी रह सकती है और जब मन भर जाता है, तो वह अपना साथी बदलने में जरा भी नहीं हिचकिचाती। भारत में ऐसा असंभव है क्योंकि एक पुरुष अपनी पत्नी से पवित्र होने की ही कामना करता है और पत्नी भी पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष से प्यार नहीं करती। नायिका राधिका आधुनिक युवती है। पाश्चात्य परिवेश का प्रभाव उस पर दिखाई देता है। परन्तु पिता के पुनः विवाह को वह स्वीकार नहीं करती। क्योंकि उसका विचार है "अगर उनकी मनोनिता प्रौढ़ा आयु की वात्सल्य से पूर्ण स्त्री होती तो शायद राधिका उसे स्वीकार भी कर लेती पर विद्या।"[68] इसलिए राधिका अपने पापा को छोड़कर विदेश चली जाती है। वह विदेश में डैन नामक युवक के साथ एक वर्ष रहती है। डैन तलाक लेकर अकेला रहता था। डैन से वह अलग हो जाती है। वह

---

[67] पचपन खम्भे लाल दीवारें- उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 10

[68] रुकोगी नहीं राधिका- उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 46

स्वतन्त्र रहने लगती है। वहीं राधिका की मुलाकात मनीष से होती है। मनीष डैन का मित्र है। राधिका अपनी पढ़ाई करके तीन साल बाद भारत लौट आती है। भारत में आकर पहले ही दिन उसका परिचय अक्षय से होता है। अक्षय विद्या के कहने पर उसे एयरपोर्ट पर लेने आता है। राधिका अपने पापा और परिवार से मिलने जाती है। वह बीती बातों को भूलकर उनके साथ रहना चाहती है परन्तु पापा विद्या से अलग गंगापार कोठी में रहने लगे थे और घर का वातावरण भी बदल गया था। पापा से मिलकर उसे अपनत्व का भाव नहीं हुआ और वह वापस दिल्ली आकर रहने लगती है। दिल्ली में अक्षय के साथ उसका परिचय बढ़ता गया। मनीष के साथ भी उसकी मुलाकात हुई और राधिका दोनों में से किसे स्वीकार करे इस दुविधा में उलझ गई। राधिका की विमाता विद्या ने आत्महत्या कर ली और तब राधिका पापा के पास गई परन्तु पापा के कहने पर भी वहाँ रुकी नहीं। पापा से कहा "नहीं पापा मैं जाना चाहती हूँ। मनीष मेरे एक बन्धु... ।"[69] राधिका ने बात अधूरी छोड़ दी और वहीं उपन्यास का अंत होता है।

इस उपन्यास में मुख्य कथा की जगह कई स्वतन्त्र उपकथाओं का भी विकास हुआ है। राधिका और डैन का सम्बन्ध, राधिका और अक्षय का सम्बन्ध, लेकिन राधिका और मनीष का रागात्मक सम्बन्ध कहानी के केंद्र में हैं। तीनों उपकथाएँ स्वतन्त्र रूप से तथा प्रभावशाली रूप से व्यक्त हैं। तीनों उपकहानियों में लेखिका ने राधिका को केंद्र में रखकर कथासूत्र को श्रृंखलित करने का सफल प्रयास किया है। प्रत्येक पुरुष का सामीप्य पाकर राधिका संतुलन खो बैठती है, पर वह निर्णय नहीं कर पाती है कि कौन अपनाने योग्य है और किसे त्याग दे। इसी कारण कथा में बिखराव बढ़ जाता है। सभी उपकथाएँ अपने आप में एक कहानी बन गई हैं।

---

[69] रुकोगी नहीं राधिका- उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 139

3. शेषयात्रा (1984)

'शेषयात्रा' उषा प्रियंवदा का अत्यधिक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें उन्होंने अनु के भावनाशील मनोगत और आत्मद्वंद्व को पढ़ने एवं परखने का कार्य किया है। अनु पति द्वारा उपेक्षित होने पर भी नारी की परम्परागत सामर्थ्यहीनता को तोड़ती है। साहस और संघर्ष से अपनी दारुण नियति को बदलने में सफल हुई है। मध्य वर्गीय प्रवासी भारतीय समाज का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। ‘शेषयात्रा’ में उषा जी सर्जनात्मक लेखन को एक नई दिशा देती हैं। इसे नारी जीवन की त्रासद स्थितियों का एक सबल दस्तावेज कहा जा सकता है। उपन्यास की नायिका अनु की साहसशील संघर्ष गाथा की कलात्मक प्रस्तुति देखने योग्य है। रचनाकार के व्यक्तित्व विकास के इस पहलू में तलाक के बाद आत्महत्या का सहारा न लेकर एक नई ज़िन्दगी की शुरुआत करने वाली अनुका की कथा प्रस्तुत करती है। अनुका एक मध्यवर्गीय परिवार की लड़की है। माँ-बाप की मृत्यु के बाद मामा-मामी द्वारा निर्धारित जीवन काटने को वह बाध्य हो जाती है। अनुका के रिश्ते की दीदी से शादी करने आए डॉ. प्रणव कुमार अनुका के सौंदर्य से आकर्षित होता है और उससे शादी करता है। शादी के बाद प्रणव अनुका को लेकर विदेश चला जाता है। अपरिचित वातावरण से किसी न किसी तरह से मेल खाने के प्रयत्न करने पर अनुका को कई स्तरों पर मानसिक द्वंद्व होता है। यह द्वंद्व उस सन्दर्भ में और भी बढ़ जाता है जब प्रणव धीरे धीरे अनुका के हर काम में कोई कमी ढूँढने लगता है। माँ बनने की अनुका की इच्छा को भी प्रणव ठुकराता है। प्रणव का परिचय चन्द्रिका से होता है। वह न्यूयॉर्क में एक टी. वी. स्टेशन में प्रोग्राम की प्रोड्यूसर है। प्रणव डॉक्टरी छोड़ कर फिल्म बनाने की योजना करता है। शूटिंग के लिए वह केलिफ़ोर्निआ जाना चाहता है। प्रणव के साथ अनुका भी जाना चाहती है। लेकिन प्रणव उसे रोकता है। अनुका को ज्योत्स्ना बेन से पता चलता है कि प्रणव वहाँ चन्द्रिका के साथ रहता है और वह उससे शादी भी करना चाहता है। अनुका यह भी समझ जाती है कि शादी से पहले भी प्रणव के कई स्त्रियों से अवैध सम्बन्ध थे। यह

अनुका की विक्षिप्त मानसिकता का कारण बन जाता है। प्रणव अनुका से तलाक चाहता है। तलाक के बाद दिव्या से अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की प्रेरणा पाकर अनुका नौकरी करके डॉक्टर बन जाती है। चन्द्रिका से बिछुड़कर पुनः डॉक्टरी करते समय प्रणव को दिल के दौरे की वजह से हार्ट सर्जरी करवानी पड़ती है। अस्वास्थ्य की वजह से वह नई प्रेमिका नमिता से शादी नहीं करता। अस्पताल में प्रणव की अनुका से मुलाकात होती है। वर्षों बाद थके टूटे और रोगी प्रणव को सामने पाकर साहस, शक्ति और आत्म विश्वास से दीपित अनुका के भीतर की संवेदनशील नारी पुनः विचलित हो उठती है। "अंदर एक रुलाई उठती है, छोटी बच्ची अनुका की रुलाई। उस अनुका की जो रो रोकर देवी देवताओं से मिन्नतें माँगा करती थी। वह अनुका जो दस साल की जिम्मेदारियों और संघर्ष से कहीं लोप हो गई थी। अब नए आवेग से लौटकर अपने सामने रोगग्रस्त जर्जर और टूटे हुए प्रणव को पाकर उससे लिपट जाना चाह रही हो।"[70]

मानसिक दृष्टि से अब प्रणव में परिवर्तन आया। अनुका की शादी दिव्या के भाई दीपांकर से होती है, जो पहले से ही उसे चाहता था। इसलिए वह खुद को पुनः प्रणव से जुड़ने नहीं देती। प्रणव भी दुबारा अनुका से मिलकर यादों को लौटाना नहीं चाहता। इसलिए वह अस्पताल छोड़कर चला जाता है। अनुका की कथा इस सत्य की ओर इशारा करती है कि "वर्तमान परिवेश में शादी से बढ़कर नारी आर्थिक सुरक्षा चाहती है जिससे वह ज़िंदगी की विकट से विकट समस्या पर दो-टूक निर्णय ले सके, अपने नीचे एक पक्की ज़मीन पा सके और अपने स्वाभिमान की रक्षा कर सके।"[71]

---

[70] शेषयात्रा- उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984, पृष्ठ 117

[71] आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिंदी साहित्य- कृष्ण बिहारी मिश्र, पृष्ठ 28

4.अन्तर्वंशी (2000)

लंबे अन्तराल के बाद सन् 2000 में 'अन्तर्वंशी' उपन्यास आया। विदेशी भूमि पर स्थित एक सहज भोली भारतीय पत्नी की मानसिक उथल-पुथल और उसके बाह्यान्तर परिवर्तन से उभरती उसकी प्रतिभा का आकलन 'अन्तर्वंशी' में लेखिका ने बड़े ही सधे हुए रूप में किया है। उषा जी ने इस उपन्यास में नागरिक जीवन के संत्रास और विदेश में बसे पति के साथ जीवनयापन करनेवाली भारतीय लड़की के सुख-दुःख को बड़ी गहराई से महसूस कर सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति से चित्रित किया है। लेखिका ने वाना की मनयात्रा के माध्यम से विदेशी भूमि पर स्थित भारतीय नारी की सामाजिक आर्थिक विषमताओं की अद्‌भुत मानसिक यंत्रणा का बड़ा ही मार्मिक आलेखन किया है। वाना की कथा भारतीय मन और विदेशी परिस्थितियों के बीच स्वयं को संतुलित कर पाने के द्वंद्व का मिला जुला रूप है। 'अन्तर्वंशी' की नायिका बनारस की वनश्री या बांसुरी अमेरिका पहुँचकर वाना हो जाती है। विदेश की धरती पर पति शिवेश एवं दोनों बेटे आकाश और विकास से बँधी बँधाई रहकर भी जीवन के बदलते घटनाक्रमों से उलझती रहती है। वाना के प्रच्छन्न मन की महात्वाकांक्षा प्रारम्भिक जीवन में एक घरेलू नारी के समान है। परन्तु क्रमशः उसका परिचय शालिनी, सारिका, क्रिस्तीन, ग्रेस जैसी शिक्षित पढ़ी लिखी विचारशील व्यावसायिक एवं पाश्चात्य प्रभावों से सुगठित नारियों से होता है। उसका बाहरी रूप बदलता है। उसके मस्तिष्क में विचारों का प्रवाह चलता है। बनारस की चुनमुन जो मोटे सूत की साड़ी पहनती थी, मटमैली साड़ी पहने जो तुलसी घाट पर खड़ी रहती थी वह बदल गई है "अब इस समय अपनी एजेंसी की यूनिफार्म पहने हुए थी। काली स्कर्ट, सफ़ेद ब्लाउज, एकदम छोटे-छोटे बाल, बाल तो उसके बनारस में भी छोटे थे, जैसे लम्बी बीमारी के बाद झड़ जाते हैं। यह बाल सुरुचि से कटे और बने थे। चेहरा बना-ठना, एक मुखौटा-सा,

पलकों पर हल्का-सा रंग हल्की भौहें, कानों में एक शायद नकली मोती, जो उसके बालों पर खूब फब रहा था।"[72]

वाना 'स्व' के सम्बन्ध में, परिवार के संदर्भ में पति व बच्चों के संदर्भ में नई सोच से कुछ तो आतंकित है। वह अपने भीतर जाग रही नारी की पहचान पाने के लिए व्याकुल है। उसके लिए इस समाज में प्रेम, पारिवारिक-सम्बन्ध, सेक्स और परिवार का स्वरूप परम्परागत धारणाओं से भिन्न है। परिवार से परे अपने निजी अस्तित्व को कायम करना भी वह अनिवार्य मानती है। एक ओर उसके सम्बन्धों और संवेदनाओं के दायरे में शिक्षित नारियाँ हैं तो दूसरी ओर पति शिवेश और राहुल, परित्यक्ता अंजी, चाची, जमीला बुआ आदि हैं। इन पात्रों ने विकट मानसिक स्थिति में वाना को संभाला, संजोया और उसके जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से जुड़ने में उसे बल दिया। इस प्रकार जीवन की ध्वंसात्मक एवं रचनात्मक दोनों स्थितियों से जूझती-उभरती वाना अपनी 'अन्तर्वंशी' के नाद को सुन पाती है और जीवन के ठहराव का अनुभव करती है।

'अन्तर्वंशी' सांकेतिक प्रतीकात्मक शीर्षक है। कथा नायिका वनश्री/ बंसरी की तरह शीर्षक में सांकेतिकता निरूपित है। 'अन्तर्वंशी'- अन्तः+ वंशी इस शब्द में वाना के अंतरमन की ओर संकेत है। वाना के अंतरमन को उसका पति शिवेश नहीं समझ पाया। पर राहुल उसके मन की इच्छा, संवेदना और कामना को समझ सका था और कथा के अंत में वही उसे स्वीकार करके वाना की अंतरमन की इच्छा को पूर्ण करता है।

[72] अन्तर्वंशी- उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 10

5.भया कबीर उदास (2007)

उषा प्रियंवदा का 'भया कबीर उदास' अगले चारों उपन्यास से भिन्न भाव-भूमि पर प्रस्तुत हुआ है। उनका यह नवीन प्रयोग एक नारी मन की चिरन्तन लालसाओं, कामनाओं, उदासी एवं निराशा को अत्यंत सहज रूप में अभिव्यक्त करता है। शरीर की पूर्णता अपूर्णता का प्रश्न किसी भी तरह मानव के मन और जीवन की पूर्णता से जुड़ जाता है। इसी प्रश्न के साथ उपन्यास शुरू होता है और अंत में प्रश्न का उत्तर भी प्राप्त हो जाता है।

यह उपन्यास घटनाओं से ज़्यादा भावनात्मक संवेदनाओं का उपन्यास है। इस उपन्यास में अतीत की स्मृतियों में डूबती उतरती 'मैं' लिल्ली या यमन के बचपन से लेकर विदेश जाने, नौकरी करने और वहाँ की निवासी होने की कथा है। वहाँ पर भी विदेश के अकेलेपन में जीवन की सूनी सड़क पर दौड़ते अपने अनुभवों को दोहराते जाते भावप्रवण धागों से बुनी गई कहानी है, जो कैंसर डायरी के पाँच टुकड़ों में, कैंसर की शल्य चिकित्सा, रेडिओ थैरेपी, केमियोथैरेपी और उससे तन मन, मस्तिष्क पर उत्पन्न यातना का और उसके बाद भी बीमारी के पुनः लौट आने की भयावह आशंका की यंत्रणा से गुज़रने के अनुभव है। डॉ. द्वारा घोषित पाँच-छह साल की जिंदगी के साथ वह गोवा आकर एक रिज़ॉर्ट में रहती है। स्वास्थ्य लाभ के लिए अथवा उस अकेले में अपनी ज़िन्दगी के अर्थ को खोजने के लिए अथवा दोनों ही के लिए उस अकेलेपन में बारिश के परिदृश्य में उत्पन्न एक रहस्यलोक में मृत्युबोध उसके मन को मथता है। परन्तु प्रकृति के बादल, बारिश, धूप, हवा, तूफ़ान ऋतुओं के परिवर्तन के बिना दार्शनिक हुए उसमें भावदीप्ति और प्राण दीप्ति होती है। सर्जरी से एक दिन पहले शेषेन्द्र के साथ सम्बन्ध बनाकर वह अपने अँधेरे भविष्य के लिए कुछ सुनहरे पल संजो लेती है। यह सम्बन्ध उसकी अपंग अपूर्ण होने जा रही औरत को पूर्णता दे गया। उसकी औरत होने की मनोकामना पूर्ण हुई। गर्भ में आए

बच्चे को कैंसर की सर्जरी से पहले अबॉर्ट कराना मेडिकल ज़रूरत थी और व्यावहारिक विवशता भी।

गोवा में वनमाली से सम्पर्क और उस रिज़ॉर्ट में वनमाली के साथ समय बिताना परिस्थिति जन्य था। कई अप्रत्याशित घटनाओं के बाद वह गोवा से दिल्ली आ जाती है। अपने घर में आकर वनमाली अतीत के पन्ने खोलता है। बचपन में उसके घर के माली का प्रतिभावान बेटा वही था जो अपने परिश्रम और प्रतिभा से इस ऊँचे पद पर पहुँचा था और जीवन में अपने उपक्रम से इतना कुछ अर्जित किया था। पर बचपन से वह उसे प्यार करता था, लेकिन दोनों के बीच इतना बड़ा फासला। तो भी उसी का प्रेम वनमाली को स्फूर्त करता रहा। प्रेम से निष्प्राण जीवन भी प्राणवान हो जाता है। सारी दुविधाओं के बाद वनमाली को अपना सच, अपने औरत होने की अपूर्णता का सच कहने के बाद ही वह विवाह के प्रस्ताव पर विचार करती है। वनमाली का प्रेम उसकी अपूर्णता की परवाह नहीं करता और उसे अपने प्यार से भर देता है। उपन्यास का आखरी अध्याय वैचारिक स्तर पर मृत्युबोध और जीवन जीने के बीच एक द्वंद्व युद्ध प्रस्तुत करता है। परन्तु वनमाली का प्रेम इस अध्याय से कहानी को नए मोड़ पर ले जाता है। प्रेम का प्रवाह जीवन को सार्थकता प्रदान करता है। वनमाली के साथ यमन का विवाह ऐसा आशावाद है जिसे यथार्थ होना ही चाहिए था। उपन्यास की सार्थकता के लिए ही नहीं पूरी कृति में फैली निराशा के अँधेरे से परे उजाले की परिणति के लिए भी यह अनिवार्य है कि वनमाली जैसे पुरुष इस संसार में कहीं तो होंगे जो अवश्य सामने आएँगे।

6.नदी (2009)

इस उपन्यास में नारी जीवन के कठोर यथार्थ का चित्रण किया गया है, कि विपरीत परिस्थितियों में भी नारी संघर्ष करके जीवन में किस प्रकार आगे बढ़ती है। इस उपन्यास की नायिका आकाशगंगा है जो विदेश में अपने पति और बेटियों के साथ रहती है।उसके पाँच साल के बेटे भविष्य की मौत हो जाती है, उसका पति अपने बेटे की मौत का जिम्मेदार अपनी पत्नी

आकाशगंगा को मानता है क्योंकि उसके दो भाई भी इसी बीमारी से मरे थे जिससे उसका बेटा मरा था। वह आकाशगंगा को इस बात की सज़ा देने के लिए विदेश में अकेला छोड़कर अपनी बेटियों को लेकर वापस लौट आता है। आकाशगंगा विदेश में अकेली रह जाती है, तब उसके जीवन का संघर्ष शुरू होता है। वह विदेश में रहने के लिए विवश है उसके पास रहने का कोई ठिकाना नहीं है। वहाँ पर वह अर्जुन सिंह और डॉ. एरिक के साथ सम्बन्ध बनाने के लिए विवश होती है। विदेश में विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए वह भारत वापस लौट आती है। वह अपने ससुराल में अपनी बेटियों के साथ खुशी से जीवन यापन करती है। उसका पति दूसरी शादी करना चाहता है इसलिए वह उसे तलाक़ दे देता है। आकाशगंगा क्लीनिक जा कर चेक-अप कराती है तो उसको पता चलता है कि वह माँ बनने वाली है। वह बहुत खुश होती है लेकिन जैसे ही वह सोचती है कि अपने पति से तो कब से सम्बन्ध टूट चुके हैं और यह बच्चा डॉ. एरिक का है तो वह परेशान हो जाती है और इस बच्चे की ख़ातिर वह वापस विदेश लौट जाती है। वहाँ डॉ. प्रवीण के घर में रहकर अपने जीवन की नई शुरुआत करती है। वह अपना बच्चा विदेशी दंपत्ति को दे देती है। उसके बेटे को ल्यूकीमिया हो जाता है लेकिन वह ठीक होकर अपनी माँ से मिलने आता है जिसे पाकर वह बहुत खुश हो जाती है क्योंकि इस बेटे के लिए ही उसने सतत् संघर्ष किया था। उसका जीवन नदी के प्रवाह के समान था। नदी को जहाँ जगह मिलती है, वह वहाँ से प्रवाहित हो जाती है उसी प्रकार आकाशगंगा ने भी जीवन में यही किया जैसी परिस्थितियाँ थी उसी के अनुरूप ढल गई और ज़िन्दगी की राह पर चलती रही।

'नदी' की गंगा मात्र उपभोग्य स्त्री नहीं है। स्त्री जीवन के अनेक सन्दर्भ उसकी जीवन यात्रा में समाहित हैं। नदी अपने आप में जीवन का सहज स्वभाव है और नई स्त्री का नदी के स्वभाव से जुड़ना, नए सिरे ये मुक्त और सहज होना है। अर्थात स्त्री को नदी का स्वरूप धारण करने और उसके जैसा बनने के लिए सम्मान, मानवीय प्रतिष्ठा और गरिमापूर्ण जीवन अनिवार्य है। अतः अर्जुन सिंह द्वारा किसी गुप्त स्थान पर सुख- सुविधाओं के साथ अपने अधीन रखने के

प्रस्ताव पर गंगा सोचती है कि "अर्जुन सिंह को मालूम नहीं है कि यह ताश के पत्तों का घर है। उसे खेत फार्म-हॉउस, गाड़ी, हीरे, सोने के कंगन ज़्यादा देर तक बाँध नहीं सकते।"[73]

आकाशगंगा अपने पति से अस्मिता और आत्मसम्मान का गला घोटकर सुलह करने के बारे में सोचती है जिसके लिए वह प्रताड़ना के चक्रव्यूह और लांछन के बारे में ज़रा भी नहीं सोचती। क्योंकि गंगा एक ऐसी स्त्री है जो अपना मार्ग स्वयं चुनती है और नदी के बहाव के समान रास्ते में जो कुछ भी मिलता है उसे सहर्ष स्वीकार करती है, इसे ही वह जीवन की निरंतरता का नाम देती है।

7. अल्पविराम (2019)

उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास अन्य उपन्यासों की तरह स्त्री के इर्द गिर्द बुना गया है। यह उपन्यास शिंजनी की स्त्री चेतना का विस्तार है। अच्छी बात यह है कि शिंजनी जिन पुरुषों के प्रेम में है, वे इक्कीसवीं सदी के पुरुष हैं जो स्त्री को चुनाव के विकल्प देते हैं। अठारह वर्ष की उम्र में विवाह और विदेश पढ़ने गए पति की मृत्यु का समाचार शिंजनी के व्यक्तित्व को कुंठित करता है और वह मनोरोगी हो जाती है। इलाज के बाद वह स्वस्थ होती है, अपने पूर्वाग्रह और कुंठाओं से मुक्त होती है। विदेश पहुँच कर वह एक स्वतन्त्र, पंखों वाली, आत्मनिर्भर लड़की के रूप में खुद को देखती है। शिंजनी की मुक्त स्त्री कि अपनी परिभाषा है। इस उपन्यास में घरेलू स्त्री के जीवन को मूल्य और सार्थकता प्रदान की गई है। शिंजनी की दृष्टि में "हर एक व्यक्ति को अपना जीवन अपनी तरह से बिताने का अधिकार होना ही स्वतन्त्रता है।"[74] यदि किसी ने अपने जीवन के प्रमुख निर्णय स्वयं लिए हैं तो यह स्वतन्त्रता है। यद्यपि परम्परागत जीवन

---

[73] नदी- उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 30

[74] अल्पविराम- उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 17

जीना शिंजनी का अपना निर्णय है फिर भी कामकाजी स्त्रियों की उपेक्षा उसे मथती है। 'क्या मेरा जीवन सार्थक नहीं है?' जीवन के तमाम रंग देखती वह, अंत में अपने खोल से बाहर निकल कर अपने निर्णय भी स्वयं लेती है और आत्मनिर्भर होना भी चुनती है। वह वाना से एक कदम और आगे की स्त्री है। एक समय में ही वह पूर्व पति और सद्य: मृत पति दोनों के प्रति प्रेम में डूबी दिखती है। "एक हृदय में कितनी भावनाएँ, कितनों के प्रति प्यार, लगाव समाहित रह सकता है, प्यार मुझे पति से था, है, और इस समय? प्रवाल से कितना सामीप्य, कितना आकर्षण, कितना लगाव महसूस हो रहा है। सच है एक हृदय में कितनों के प्रति प्यार, कोमल भावनाएँ समाहित रह सकती है।"[75]

स्त्री के कोमल मन में ये पुस्तक झांकती हैं, उषा जी की लेखनी में महिला पात्र सशक्त और आत्मविश्वास से भरपूर होती हैं। वह सामाजिक परम्पराओं से लड़ती है और अपना जीवन जीने में यक़ीन रखती है। शिंजनी को जब पति के अतीत का पता लगता है तो वह टूटती नहीं, उसे स्वीकार करती है। पति की अकस्मात् मृत्यु और गुमनाम अतीत का खुलासा एक साथ होता है, लेकिन इस परिस्थिति में एक पाठक के रूप में हमें एक गहरा धक्का पहुँचता है कि इतनी सुंदर प्रेम कथा का ऐसा कलुषित अंत। पर शुक्र है कि शिंजनी एक प्रबुद्ध स्त्री है। आम स्त्री की तरह वह चीख-चिल्लाहट नहीं मचाती और अपना रास्ता खुद चुनती है। वह चुपचाप अपना कमरा तक सपत्नी और उनके परिवार के लिए खाली कर देती है। जो उसके मृत पति ने उन दोनों के लिए अमेरिका यात्रा के लिए चुना था। वह यथार्थ को समझती है और उसे पूरे हृदय से आत्मसात् करती है।

---

[75] वही, पृष्ठ 298

यह प्रेम कथा दुखान्त होते हुए भी भविष्य के लिए एक रास्ता खोलती जाती है। विशुद्ध अमर प्रेम कथा। उषा प्रियंवदा कहती हैं "अल्पविराम एक प्रेम कथा है, बाकी वृत्तांत एक चौखटा है, एक फ्रेम, परन्तु फ्रेम के बिना तस्वीर अधूरी है। इसी प्रकार प्रेम कहानी प्रवाल के बिना अपूर्ण है।"[76]

इस उपन्यास के फ्लैप पर लिखा है कि उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास एक लम्बे दिवास्वप्न की तरह है, जिसमें तिलिस्मी, चमत्कारी अनुभवों के साथ- साथ अनपेक्षित घटनाएँ भी पात्रों के जीवन से जुड़ी हुई हैं। एक ओर यह मृत्यु के कगार पर खड़े परिपक्व व्यक्ति की तर्क विरुद्ध, असंगत, अपने से उम्र में आधी युवती के प्यार में आकंठ डूब जाने की कहानी है, तो साथ ही साथ एक अविकसित, अप्रस्फुटित, अव्यावहारिक स्त्री के सजग, सतर्क और स्वयंसिद्ध होने की भी यात्रा है।

कहानी संग्रह

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य के विकास में उषा प्रियंवदा का विशेष योगदान रहा है। उनकी पहली कहानी 'लाल चूनर' जो 1953 में 'सरिता' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। उनके कहानी संग्रहों में 'फिर वसंत आया', 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' , 'एक कोई दूसरा', 'कितना बड़ा झूठ', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'शून्य तथा अन्य रचनाएँ', 'सम्पूर्ण कहानियाँ', 'बनवास' हैं। उषा जी उन लेखिकाओं में से हैं जिनमें ज़िन्दगी को समझने, आमने-सामने होकर उसे परखने का साहस है। वे नई कहानी को एक विशेष रूप देने में सफल रही हैं। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का ज्यादातर हिस्सा कहानी साहित्य पर निर्भर है। अतः उनके कहानी साहित्य पर एक सरसरी

[76] अल्पविराम- उषा प्रियंवदा, बैक फ्लैप कवर (पार्श्व आवरण)

नज़र उनके योगदान का परिचय देती है। डॉ. इंद्रनाथ मदान प्रियंवदा जी की कहानी कला के विषय में लिखते हैं "उषा प्रियंवदा की कहानी कला में रूढ़ियों, मृत परम्पराओं, जड़ मान्यताओं पर मीठी-मीठी चोटों की ध्वनि निकलती है। घिरे हुए जीवन की उबासी एवं उदासी उभरती है। सूक्ष्म व्यंग्य कहानीकार के बौद्धिक विकास और कलात्मक संयम का परिचय देता है, जो तटस्थ दृष्टि और गहन चिन्तन का परिणाम है।"[77]

उषा जी की कहानियों को 'नई कहानी' के आंदोलन से भी जोड़ा गया है। जिसमें आधुनिकता का बोध उजागर होता है। इनकी कहानियों का संक्षिप्त परिचय दृष्टव्य है।

1. फिर वसंत आया

यह उषा जी का प्रथम कहानी संग्रह है और जिसमें उनकी उन 12 कहानियों को संकलित किया गया है जो 'सरिता' पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। इस संग्रह की पहली कहानी **'मेनका: रम्भा और उर्वशी'** विवाह से जुड़ी समस्या को केंद्र में रखकर लिखी गई है। कहानी के एक पात्र विनोद की चाची बेहद सुंदर महिला हैं और वह अपने तीनों पुत्रों के लिए सुंदर बहुएँ लाना चाहती हैं। परन्तु उनकी यह चाह, मात्र चाह बन कर ही रह जाती है और बहुत कोशिशों के बाद भी किसी न किसी कारण से पुत्रों का विवाह असुंदर लड़कियों से हो जाता है, इस प्रकार चाची इन तीनों बहुओं को ही मेनका, रम्भा, और उर्वशी मानकर अपनी नियति को स्वीकार कर लेती है। कहानी आदर्श का मुखौटा ओढ़े हुए है।

[77] आलोचना और साहित्य- डॉ. इंद्रनाथ मदान, पृष्ठ 174

'दोस्त' कहानी में उषा जी ने दोस्ती के महत्त्व को उजागर किया है। कहानी के पात्र अजय के जीवन में दोस्तों का बहुत महत्त्व है और वह अपने दोस्तों पर जान छिड़कता है। उसके जीवन में अपनी पत्नी से ज़्यादा दोस्तों का स्थान है, इसलिए उसकी पत्नी अजय को उसके दोस्तों के लिए कोसती रहती है। परन्तु जब एक बार अजय के घर विवाह समारोह का आयोजन हो रहा होता है, तभी उसके पैर की हड्डी टूट जाने की वजह से वह हिल-डुल भी नहीं पाता। उस मुसीबत की घड़ी में सारा काम अजय के दोस्त सँभाल लेते हैं और विवाह का सारा कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है। तब उसकी पत्नी को दोस्ती का महत्त्व समझ में आता है।

'आश्रिता' यह कहानी मधु के जीवन पर आधारित है, जहाँ मधु अपनी चाची के घर आश्रिता है और उनकी प्रताड़ना और दुर्व्यवहार के साथ जीवन व्यतीत कर रही है। शेखर नामक सफल पुरुष का विवाह प्रस्ताव आने पर भी मेधु की चाची उसका विवाह एक चालीस वर्षीय व्यक्ति से करा देती हैं। यह अनमेल विवाह पाठकों के हृदय को झकझोर कर रख देता है।

'मान और हठ' दिव्या और मुकुल के मान और हठ की कहानी है। दोनों पति-पत्नी हैं जहाँ दिव्या अत्यंत सुंदर है, वहीं मुकुल काला और कुरुप है। दिव्या अपनी सुंदरता के मान में है और मुकुल पुरुषत्व के हठ में, कोई झुकना नहीं चाहता परन्तु वक़्त बदलता है। जहाँ मुकुल दूसरा विवाह करता है और दिव्या नौकरी करने लगती है। पर आठ साल बाद दूसरी पत्नी का निधन हो जाने पर मुकुल पुनः दिव्या की शरण में आ जाता है। पुरुषत्व का हठ टूट जाता है और स्त्रीत्त्व का मान भी ।

'नष्ट नीड़' एक प्रेम कहानी है। समीर के पास रीना से विवाह का प्रस्ताव आता है किंतु समीर उस प्रस्ताव को अस्वीकार करता है। रीना का विवाह अन्यत्र तय होने पर उसे अपने प्रेम का एहसास होने लगता है। रीना भी उससे उतना ही प्रेम करती है। समीर रीना के पिता

से विवाह रोकने की विनती करता है। किंतु रीना के पिता अपनी पोजीशन के डर से रीना का विवाह करा देते हैं। इसी कारण समीर के सपनों का नीड़ नष्ट हो जाता है।

'पूर्ति' इस शीर्षक से उषा जी ने दो कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें एक 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' संग्रह में संकलित है। इस कहानी में उषा जी ने प्रेम में भावनाओं के महत्त्व को उजागर करते हुए जाति, वर्ण और उम्र के दायरे को नकारा है। इस कहानी में विजय और सौम्या के प्रेम का चित्रण है।

'नई कोंपल' इस कहानी की नायिका बिन्नी का जीवन अत्यंत त्रासद है। वह पूरी तरह परिवार के प्रति समर्पित है परन्तु फिर भी उसे सास का तिरस्कार और फटकार तथा पति की अवहेलना झेलनी पड़ती है परन्तु फिर भी उसे कोई शिकायत नहीं है। पर एक दिन जब सुबोध बिन्नी द्वारा लिखा एक पत्र पढ़ता है तो उसका हृदय प्रेम भाव से भर जाता है और उसके हृदय में बिन्नी के प्रति एक नई कोमल कोंपल फूट पड़ती है।

'तूफ़ान के बाद' कहानी की नायिका अलका को अपने से उम्र में काफी बड़े, अपने भाई के मित्र अविनाश बाबू से प्रेम हो जाता है। परन्तु दूसरी बिरादरी का और दुश्चरित्र होने के कारण वकील बाबू अलका का विवाह अविनाश से न करवा कर जीत बाबू से करवा देते हैं और ये अलका के जीवन में आया तूफान था। परन्तु अंत में वकील बाबू अपने किये पर पछताते हुए अलका से माफ़ी माँगते हैं। अलका बड़े भाई को माफ़ कर देती है क्योंकि अब तूफान के बाद केवल नीरव शान्ति शेष है।

'फिर वसंत आया' इस कहानी में बहुत सी परिस्थितियों के कारण छाया और विनायक के असफल प्रेम से उत्पन्न अकेलापन और वैयक्तिकता का बोध कामकाजी और अविवाहित लड़की द्वारा व्यक्त किया गया है। परिस्थितियों के आगे दोनों विवश हैं और उनका प्रेम असफल होता दिखता है। परन्तु कुछ वर्षों बाद दोनों के पुनः मिलन से कहीं न कहीं फिर वसंत आता

है। इसके आलावा इस संग्रह की अन्य कहानियाँ **'अकेली राह'**, और **'बिखरे तिनके: नया नीड़'** भी कथ्य तथा शिल्प की दृष्टि से अत्यंत सफल और महत्त्वपूर्ण हैं।

2. ज़िंदगी और गुलाब के फूल (1961)

'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी संकलन में संकलित **'पैरम्बुलेटर'** कहानी में एक गरीब माँ-बाप को अपनी पुत्री के इलाज के लिए पौरम्बुलेटर बेचनी पड़ती है। **'मोहबन्ध'** कहानी में नीलू कई पुरुषों के संपर्क में घुलती रही है। इसके विपरीत अंचला एक व्यक्ति से जुड़ती है और उसके टूटने पर अपने में टूटती ही चली जाती है। **'जाले'** कहानी में कौमुदी और राजेश्वर विवाह से पूर्व अपने-अपने एकान्त में संतुष्ट और सुखी थे। विवाह करने पर राजेंद्र इस बात को समझ नहीं सके कि विवाह एक ऐसी संस्था है जहाँ दोनों एक दूसरे को स्वतन्त्रता देते हुए भी एक दूसरे पर नियंत्रण रखना चाहते हैं। **'छुट्टी का दिन'** अकेलेपन के बोध को उजागर करती है। **'कच्चे धागे'** कहानी की कुंतल के चारों तरफ अभाव ही अभाव थे। वह अपनी स्थिति को भूलकर असाधारण सपने देखती है, लेकिन इंद्रधनुषी सपने उसकी सतरंगी चूड़ियों के समान टूटकर बिखर जाते हैं। **'पूर्ति'** की तारा अपने जीवन के अकेलेपन से व्यथित है। ऐसी अवस्था में उसकी मुलाकात नलिन से होती है। वही उसके जीवन के शून्य को भर जाता है। **'कंटीली छाँह'** एक ऐसे मास्टर साहब की कहानी है जिन्होंने बयालीस साल की उम्र में अड़तीस साल की इंद्रा से शादी की। **'दो अँधेरे'** की कौशल्या अपने छोटे, अभाव-ग्रस्त एकान्त में अपने पति के साथ परम सुखी थी। परन्तु उसका पति उसके सहज प्राप्य शरीर के आगे किसी और के अप्राप्य शरीर की खोज में निकल पड़ता है। **'चाँद चलता रहा'** कहानी रोहिणी शर्मा और अरविन्द पर केंद्रित है। अरविन्द ने उससे विवाह से पूर्व समर्पण माँगा था, उसने इनकार कर दिया था। कुछ ही दिनों बाद वह दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। यही नैतिकता उसे बार बार छीलती

तराशती है। **'दृष्टिकोण'** कहानी में एक दिशा में मधुर पड़ी है तो दूसरी में साम्ब। **'वापसी'** उषा प्रियंवदा जी की श्रेष्ठ कहानी है। आधुनिक युग में वृद्धों की स्थिति कितनी दयनीय होती जा रही है, इसका चित्रण कहानी करती है। **'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल'** कहानी एक बेरोजगार युवक के घर में होनेवाली उपेक्षा और कामकाजी नारी का घर में बढ़ते हुए सम्मान को उजागर करता है।

3. कितना बड़ा झूठ (1972)

इस कहानी संग्रह में आठ कहानियाँ संकलित है। यह संग्रह लेखिका ने पति किम को समर्पित किया है। इसका चौथा संस्करण 2008 में प्रकाशित हुआ है।

'सम्बन्ध' कहानी की श्यामला अपना जीवन मुक्त होकर, स्वतन्त्र रूप से जीना चाहती है। श्यामला का पुरुष मित्र विवाहित डॉक्टर सर्जन है। सर्जन को वह अपना मित्र, प्रेमी, सब कुछ मानकर उससे शारीरिक सम्बन्ध बनाये रखती है। इस कहानी में हमें पाश्चात्य परिवेश का चित्रण देखने को मिलता है।

'प्रतिध्वनियाँ' कहानी की वसु अपने पति और ससुराल के अन्य सदस्यों के साथ जुड़ नहीं पाई। वसु अपने पति श्यामल को तलाक दे देती है। डॉ. जुलियन के साथ उसके अनैतिक सम्बन्ध बन जाते हैं। वसु विदेश से भारत अपनी बहन के घर आ जाती है। सुधा के परिवार में सुधा दैनिक कार्यों में उलझी रहती है। बाद में सुधा को वसु के तलाक का पता चलता है। वसु पुनः अपनी बेटी रुचिरा और पति श्यामल से मिलती है। परन्तु वसु का मानना है कि "विवाह एक मीनिंगलेस सी रस्म है, जिसमें हमें बाँध दिया गया था।"[78]

---

[78] कितना बड़ा झूठ- उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 25

'कितना बड़ा झूठ' की किरण विश्वेश्वर से गठबंधित है, फिर भी मैक्स से जुड़ी हुई है। मैक्स के साथ जो उसके सम्बन्ध रहे हैं, उनके लिए उसके मन में न तो कोई ग्लानि है, न कोई पश्चात्ताप, न अपराध भावना। **'ट्रिप'** कहानी में पति-पत्नी के बीच मधुर क्षणों की समाप्ति हो चुकी है। संबंधों में आ रहे बदलाव को यह उजागर करती है। **'नींद'** कहानी की नायिका अपने पहले व्यक्ति से अलगाव में आकर अतीत उत्तप्त हो जाती है। उसके लिए महत्त्वपूर्ण है तीसरा व्यक्ति। **'सुरंग'** एक ऐसी कहानी है जिसमें बेटे की मौत की ट्रेजेडी ने माँ को डस लिया है। **'स्वीकृति'** की जपा का सत्य से विवाह नियोजित हुआ था। जब सत्य जपा को अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति का माध्यम बनाने लगता है, तब जपा तीसरे व्यक्ति के सम्पर्क में आती है। **'मछलियाँ'** वॉशिंग्टन के परिवेश में लिखी गई एक महत्वपूर्ण कहानी है।

4. एक कोई दूसरा (1972)

इस संग्रह की कहानियों में भारतीय एवं विदेशी परिस्थितियों का द्वंद्व देखने को मिलता है।

'एक कोई दूसरा' कहानी के केंद्र में निलांजना है, जो केवल पिकनिक, दावतों और क्लबों की ज़िन्दगी जीना चाहती है, उसका रिसर्च मात्र एक बहाना था, उसकी ज़िन्दगी का मकसद यही सब रहा और विशेषकर पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करना। परन्तु डॉ. कुमार के संपर्क में आते ही उसकी ज़िन्दगी बदल जाती है। निलांजना डॉ. कुमार के पारिवारिक जीवन में कटुता नहीं आने देना चाहती इसलिए सब से कट कर बिल्कुल अकेली हो जाती है। पर वह स्वयं को अकेला नहीं मानती क्योंकि डॉ. कुमार की पुस्तक 'एक कोई और' निलांजना को ही समर्पित है तो वह अकेली नहीं है। 'एक कोई और' कोई और नहीं बल्कि नीलांजना ही है।

'झूठा दर्पण' यह कहानी यति, मीरा, और अमृता के इर्द-गिर्द घूमती नज़र आती है। यहाँ यति अमृता को फ्रेंच सिखाता है और उसके प्रति झुकाव भी महसूस करता है परन्तु यति मीरा के साथ विवाहित है। जब अमृता को कुँवर नाम के लड़के के साथ विवाह के लिए कहा जाता है तो वह मान जाती है और यह देख कर मीरा चौंक जाती है, क्योंकि मीरा यह बात जानती थी कि अमृता यति से प्रेम करती है।

'सागर पार का संगीत' इस कहानी में कनाडा में रह रहे पति आस्कर द्वारा अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण पति देवयानी को वक़्त न दे पाने के कारण देवयानी का आस्कर के चचेरे भाई को समर्पित हो जाने को चित्रित किया गया है। कहानी वहाँ महत्त्वपूर्ण हो जाती है, जहाँ देवयानी इस फिसलन में कहीं भी खुद को अपराधी नहीं समझती और न अपराध बोध से ग्रसित नज़र आती है।

'पिघलती हुई बर्फ' इस कहानी का मुख्य पात्र अक्षय है, जो अपराध भावना से ग्रस्त है। जब वह विदेश में था तो सुधीरा से उसे प्रेम हो जाता है । परन्तु जब सुधीरा वीरू से विवाह करने का निर्णय लेती है तो अक्षय वीरू से ईर्ष्या के कारण उसे बिना ब्रेक की गाड़ी दे देता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है और वीरू की मृत्यु से सुधीरा अपाहिज बन जाती है। जब अक्षय भारत लौटता है तो छवि से जुड़ना चाहता है पर नहीं जुड़ पाता परन्तु अंततः छवि के साथ एक नया जीवन प्रारम्भ करता है।

'चांदनी में बर्फ' यह कहानी भारतीय एवं पाश्चात्य स्त्री के मध्य के लघु अंतर को रेखांकित करती नज़र आती है। एक ओर जहाँ कल्याणी विवाह हो जाने के बाद अपने पूर्व प्रेमी हेम से संबंध नहीं रखना चाहती और हेम द्वारा सम्बन्ध बनाने के प्रयास को भी विफल कर देती है। वहीं मीरा हेम के साथ विवाहित है परन्तु पाश्चात्य विचारों की होने के कारण अपने पूर्व मित्रों से संपर्क बनाये रखती है।

'टूटे हुए' कहानी की मुख्य पात्र टीटी यानी तन्त्री है। इस कहानी में लेखिका ने विवाह के पश्चात प्रेम के त्रिकोण के कारण पति-पत्नी के बीच आए मन-मुटाव का चित्रण किया है।

'कोई नहीं' में एक ऐसी स्त्री को आधार बनाया गया है जिसका अतीत विफल है, वर्तमान असफल, और भविष्य अनिश्चित। नमिता और अक्षय का प्रेम एक बीती कहानी है, जो अतीत की गहराईयों में विलीन हो चुका है। अक्षय ने एक जनरल की बेटी से विवाह कर लिया है और नमिता कुँवारी रहकर ही ज़िन्दगी बिता रही है। नमिता को अतीत की याद विफल कर देती है और यही कारण है कि नमिता अतीत को अनकहा ही रहने देती है, यह खंडित प्रेम उसके व्यक्तित्व को बिखेर देता है।

5. शून्य तथा अन्य रचनाएँ (1996)

'शून्य तथा अन्य रचनाएँ' नामक पुस्तक में चार कहानियाँ और विदेश के यात्रा संस्मरण तथा अमेरिका से पत्र संकलित है। **'पुनरावृति'** नामक कहानी में लेखिका ने कथा पात्रों को बड़ी विचित्र स्थिति में डाल रखा है। **'प्रसंग'** कहानी की नायिका ममता जैन डॉक्टर है। वह विदेश चली जाती है। विदेश में उम्र बढ़ती गई पर शादी नहीं हुई । वह हर बुधवार को अपने प्रेमी राघव से मिलती है। राघव के परिवार के विषय में कुछ नहीं जानती। बुआ के बुलाने पर वह भारत लौटती है। उसका विवाह एक विधुर, दो बड़ी बेटियों के पिता के साथ होता है। एक अजनबी के साथ रहने पर उसे राघव की मौत के बारे में पता चलता है। जिसके कारण उसने इस विवाह को स्वीकार किया। **'शून्य'** कहानी एक नए विषय के साथ प्रस्तुत हुई है। यहाँ लेखिका ने विदेश में पढ़ाई करने गए हुए छात्रों की समस्याओं को केंद्र में रखा है। उनकी कठिनाइओं पर उषा जी ने प्रकाश डाला है। विदेश में ज़िन्दगी बेहद मुश्किल है, आदमी एक मशीन बन जाता है, रात- रात भर कंप्यूटर पर बैठे रहो, नौकरी भी करो और पढ़ाई भी करो।

नायक वर्षों तक विदेश में रहा, फिर भी अपने पिता के लिए एक पार्कर पेन तक ला नहीं सकता। पिता की मृत्यु पर वह बड़ी कठिनाई से घर पहुँच पाता है। जब वह लौटकर वापस आया तो उसके घर में आग लग जाती है। उसकी पीएच.डी. की संकलित सामग्री जल जाती है। और शोध कार्य पुनः करने का साहस उसमें नहीं था न कोई उत्साह। **'आधा शहर'** कहानी की नायिका बदनाम माँ की बेटी थी जो छोटी उम्र में घर से भाग गई थी। जिस लड़के से उसने शादी की थी उसने आत्महत्या की। उसके बाद विदेश में उसे पढ़ाने का स्थान मिला पर उसके सहयोगियों ने उसे काफी बदनाम किया।

'मेरी प्रिय कहानियाँ' की भूमिका में उषा जी ने लिखा है "मैं स्वयं एक बहुत 'प्राइवेट पर्सन' हूँ और गहरे मित्र बनाने में मुझे समय लगता है। शायद मेरे पात्रों के अकेलेपन में मेरी इसी दृष्टि और प्रवृत्ति का प्रभाव लगता है।"[79]

अन्य साहित्य

'शून्य तथा अन्य रचनाएँ' संग्रह में कहानियों के अतिरिक्त अन्य विधाएँ भी पत्र-साहित्य, यात्रा संस्मरण संकलित है। उषा जी ने अपनी विदेश यात्रा का वर्णन यात्रा संस्मरण 1, 2, 3 में किया है। पाठकों को उन्होंने अमेरिका से पत्र लिखे हैं। चौदह पत्रों में उनके पत्र लेखन का परिचय मिलता है।

उषा प्रियंवदा ने अनुवाद में भी अपनी कुशलता दिखाई है। 'श्रेष्ठ हिंदी कहानियाँ' का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है। मीराबाई और सूरदास के पदों का अंग्रेज़ी में अनुवाद भी उनके द्वारा किया गया है। यह अनुवाद पुस्तक 'साहित्य अकादमी नई दिल्ली' से प्रकाशित है। इसके

[79] मेरी प्रिय कहानियाँ- उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 10

अतिरिक्त भारतीय साहित्य, लोककथा एवं मध्यकालीन भक्तिकाव्य पर अनेक लेख अंग्रेज़ी भाषा में समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं।

यह अध्याय उषा प्रियंवदा के व्यक्तित्व व कृतित्व पर आधारित है। इनका लेखन 1950 के दशक से शुरू हुआ। इन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत कहानी लेखन से की किंतु अपनी कलम को केवल कहानी लेखन तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि आगे चलकर 1961 में अपने पहले उपन्यास के प्रकाशन से, उपन्यास के क्षेत्र में भी स्वयं को एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर के रूप में स्थापित किया। किसी भी रचनाकार के कृतित्व का मूल्यांकन करते समय उसकी समसामयिक परिस्थिति, परिवेश और देशकाल को भी देखा जाना आवश्यक होता है। ये वह दौर था जब संबंधों के टूटन की आवाज़ और संयुक्त परिवार के बिखरने की अनुगूँज सुनाई देने लगी थी। अतः ये तत्व उषा प्रियंवदा के साहित्य में भी प्रतिबिंबित होते हैं। हमें इनकी रचनओं में आपसी संबंधों का बिखराव और पश्चिमी परिवेश की भरपूर झलक दिखलाई देती है। उन्होंने अपने पहले उपन्यास 'पचपन खंभे लाल दीवारें' से ही लेखन में शानदार दस्तक दी है। कालांतर में 'रूकोगी नहीं राधिका', 'शेषयात्रा', 'भया कबीर उदास' और कहानी संग्रहों में लेखिका ने विवाह, सम्बन्ध, इत्यादि की परिधि में ही अपनी लेखनी को सीमित कर दिया। बच्चन सिंह ने 'आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द' पुस्तक में 'विडंबना' का ज़िक्र किया। उषा प्रियंवदा के साहित्य में भी विडंबना दिखती है, वे स्वयं 'पचपन खंभे लाल दीवारें' में कहती हैं कि 'जो हम नहीं चाहते, वही करने के लिए विवश हैं'।

उषा प्रियंवदा लगभग सात दशकों से लेखन में सक्रिय हैं। उनके कथा-साहित्य में उनके समय की पहचान और समाजिकता-बोध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। लेखिका वर्तमान में अमेरिका में रहती हैं परन्तु उनका साहित्य सिर्फ पश्चिमी पृष्ठभूमि पर ही आधारित नहीं है

बल्कि उसमें भारतीयता की झलक भी दिखाई देती है। यही विशेषता इनके कथा-साहित्य को महत्वपूर्ण बनाती है। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कहानी हो या उपन्यास, उषा प्रियंवदा एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। वह एक ऐसी रचनाकार हैं जिन्होंने अपने निजी जीवन के अनुभवों को अपने कथा- साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। वह भारतीय परिवेश के साथ-साथ पाश्चात्य परिवेश से भी परिचित हैं इसलिए इन दोनों सभ्यताओं और संस्कृतियों की विभिन्नता तथा उनके कारणों को अपने कथा साहित्य में उभारने का प्रयास करती हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में मानवीय संवेदनाओं को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। मानवीय संवेदनाओं को सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। लेखिका परम्परागत रूढ़ियों के प्रति विद्रोह और नई मान्यताओं को अपनाने की कोशिश करती हैं, इसी लिए ऐसी स्थितियों को गहरी संवेदनशीलता से चित्रित करने में सफल भी रही हैं।

तृतीय अध्याय

हिंदी के आधुनिकता बोध वाले उपन्यास और उषा प्रियंवदा

1.1 हिंदी के आधुनिकता बोध वाले उपन्यास

सन् 1960 के बाद का कथा साहित्य आधुनिक संवेदना का तीसरा दौर समझा जाता है। सन् 1960 ई. के बाद का कथा साहित्य अपने पूर्ववर्ती कथा साहित्य से संवेदना और शिल्प की दृष्टि से भिन्न है। यथार्थ को उसके निर्मम रूप में सन् 1960 के बाद की रचनाओं में रेखांकित किया गया है। धर्मवीर भारती ने पूर्ववर्ती और समकालीन साहित्य की विभाजक रेखा को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि "सन् 60 के पहले और बाद की कहानियों के बीच यदि विभाजक रेखा खींची जा सकती है तो केवल दृष्टि और संवेदना के स्तर पर। सन् 60 के बाद का लेखक कहानी चित्रित नहीं करता, कहानी जीता है।"[80]

यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि आज विश्व पर मानव जीवन के अस्तित्व का संकट खड़ा है। इसी मानवीय संकट की अवधारणा रचनाकार अपनी रचनाओं में करता है। किंतु रचनाकार की मुद्रा प्रश्नगर्भित है। औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया ने समाज व जीवन को बुरी तरह जटिलता के आवर्त में ढकेल दिया है परिणामस्वरूप मानव जीवन में उत्पन्न छटपटाहट, चाहे वह नगरीय जीवन से सम्बद्ध हो या ग्राम्य जीवन से, कथा-साहित्य में अभिव्यक्त हुई है।

---

[80] आधुनिक उपन्यास सर्जन और आलोचना :- डॉ. चंद्रकांत बान्दिवदेकर, पृष्ठ 13

समकालीन कथाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से, आज की ज़िन्दगी को पूरी तरह उसके समस्त वैविध्य और विस्तार के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयत्न कर रहा है। साथ ही इसमें प्रामाणिक अनुभूति और भोगे हुए जीवन की अभिव्यक्ति की माँग है। सामाजिक मुखौटों का बंधन और मूल्यों की कृत्रिमता पर करारी चोट करना समकालीन कथाकार की कथा रचना का प्रमुख लक्ष्य बना हुआ है। इस दौर का कथा साहित्य पिछले दौर की तुलना में परिवेश के प्रति अधिक सचेत दिखाई देता है।

"यथार्थ की ओर एक नया प्रयाण और परिवेश के प्रति दृष्टि, ये दो प्रवृतियाँ आधार भूमि हैं, जिनसे समकालीन कहानी की समस्त प्रवृत्तियाँ प्रेरित और स्वतः स्फूर्त हैं।"[81] कुछ विद्वानों ने स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों को 'आधुनिकता-बोध' के रूप में स्वीकार किया है। साठोत्तरी उपन्यास, 'आधुनिकतावादी' विचारधारा से विशेष रूप से प्रभावित हैं। औद्योगीकरण, बौद्धिकता का अतिरेक, यन्त्रीकरण तथा अस्तित्ववादी पाश्चात्य विचारधाराओं के फलस्वरुप आधुनिकता की जो स्थिति उत्पन्न हुई उसका प्रतिबिंब साहित्य की सभी विधाओं के साथ उपन्यास साहित्य पर भी देखने को मिलता है। इन सभी स्थितियों के कारण व्यक्ति की अपनी पहचान कहीं खो गई है। इस खोए हुए व्यक्तित्व की 'खोज प्रक्रिया' का नाम आधुनिकता है।

आधुनिकता के सम्बन्ध में डॉ. लक्ष्मी सागर का मत तर्कसंगत प्रतीत होता है "आधुनिकता का अर्थ शराब पीना, बीयर पीना, विवाहित बीवियों को तलाक देना, यूरोप के होटलों, रेस्तराओं के उल्लेख करना, 'परमिसिव सोसायटी' का दम भरना आदि नहीं है और न

[81] समकालीन कहानी:- रचना मुद्रा - डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृष्ठ 41

वह इतिहास व परंपरा से विच्छिन्न कोई क्रम ही है | सामाजिक साहित्य के संदर्भ में आधुनिकता और युगबोध का प्रश्न भी जुड़ा है।"[82]

आधुनिकता के हिंदी साहित्य में प्रवेश ने हिंदी साहित्य में विकास और परिवर्तन का युग ला दिया है। आधुनिकता के साहित्य में प्रवेश को लेकर विविध भ्रांतियाँ मिलती हैं। सन् 1837 में दिल्ली में एक लियोग्रैफिक प्रेस तथा इससे पहले भी कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज से कुछ हिंदी पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें से कुछ किताबों में आधुनिकता के तत्व पाए जाते हैं। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने आधुनिकता के साहित्य में प्रवेश तथा उसके विकसित होते रूप को अलग दृष्टि से देखते हुए लिखा है कि "हिंदी साहित्य के संदर्भ में आधुनिक विशेषण का प्रयोग सामान्यतः 1857 ई. के बाद के साहित्य एवं उसकी प्रवृत्तियों के लिए होता है।"[83]

आधुनिकता का साहित्य में प्रवेश सामान्यतः 1857 के बाद होता है। उसके पहले कुछ विधाओं के साहित्य में आधुनिकता की प्रवृतियाँ पायी जाती हैं किंतु बिल्कुल कम मात्रा में। आधुनिकता के साहित्य में प्रवेश की परम्परा काफी समृद्ध है। उपन्यास साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश पहले से हुआ है, किंतु आधुनिक काल से यह परम्परा और अधिक समृद्ध हुई। इस प्रक्रिया ने स्वातंत्र्योत्तर काल के बाद गति ली। लेकिन साठोत्तरी काल के बाद जिस तरह आधुनिकता बोध का उपन्यास साहित्य में प्रवेश होने लगा, आधुनिकता की दिशा ही बदल गई। आधुनिकता, आधुनिकता बोध की सारी प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ इन उपन्यासों में पूर्ण रूप से विकसित और परिलक्षित हुईं। इसमें न केवल पुरुष अपितु महिला रचनाकारों ने भी सशक्त भूमिका निभाई है।

---

[82] स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास:- डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ 33-34

[83] आधुनिक साहित्य और साहित्यकार :- डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, पृष्ठ 05

स्वातंत्र्योत्तर युग में नारी-जागरण एवं स्त्री-शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इसके परिणामस्वरूप उपन्यास ही नहीं, साहित्य के हर क्षेत्र में समृद्धि प्रदान करने वाली महिला रचनाकारों की एक सशक्त पीढ़ी का उदय हुआ। इस पीढ़ी ने समाज के विभिन्न विषयों के साथ ही साथ आधुनिक हिंदी उपन्यासों की नवीनतम धारा, जिसे आधुनिकता बोध का उपन्यास कहा जा सकता है, की रचना प्रचुर मात्रा में की। औद्योगीकरण, बदलते हुए परिवेश, भ्रष्ट व्यवस्था, महानगरीय जीवन और यांत्रिक सभ्यता के परिणाम से आज जीवन में अकेलापन एवं निराशा घर कर गई है। कुंठा, संत्रास एवं असुरक्षा की भावना ने हमें संत्रस्त कर दिया है। वर्तमान दौर में इस आधुनिकता बोध को व्यक्त करने वाले अनेकानेक कथाकार हैं, जिनमें मुख्य रूप से नरेश मेहता, शशि प्रभा शास्त्री, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी और उषा प्रियंवदा आदि का नाम आता है।

1.1.1 नरेश मेहता (1922)

आधुनिक भारतीय साहित्य की विशाल सृजनधारा में जो विशिष्ट व्यक्तित्व अंकुरित, पल्लवित एवं विकसित हुए तथा जिन्होंने हिंदी साहित्य को परितृप्त एवं परिपूर्ण किया, उनमें एक नाम नरेश मेहता का है। उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारत के महानगरीय वातावरण में पनपी मानवीय संबंधों की अर्थहीनता और अकेलेपन की अनुभूति को अपनी रचना का विषय बनाया है। उनके 'डूबते मस्तूल' नामक उपन्यास में जीवन से निराश और सामाजिक अत्याचारों से क्षुब्ध रंजना ने अपने और समाज के मध्य एक प्रकार की तटस्थता बना ली है। वह पार्टियों में नहीं जाती, लोगों से घनिष्ठता भी नहीं रखती। एकाकीपन की स्थिति में रंजना को अवकाश

मिल पाया है कि वह सोच सके कि "रंजना एक व्यक्ति भी है और जिसके निकट इन सामाजिक शिष्टताओं एवं वाक् चतुराई का कोई अर्थ नहीं रह गया है।"[84]

यह एकाकीपन आधुनिकता बोध का एक लक्षण है। उपन्यास में आत्महत्या रंजना के निराश जीवन के एकाकी भाव की प्रबलतम प्रक्रिया है। समाज से बिल्कुल कटकर व्यक्ति का जीवन दूभर हो जाता है और वह आत्महत्या कर बैठता है।

स्त्री-पुरुष संबंधों की समस्या का सर्वाधिक चित्रण स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने किया है। 'डूबते मस्तूल' में भी विवाहित जीवन के संघर्षों को उभारा गया है, और साथ ही रंजना के माध्यम से नारी की त्रासदी को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। रंजना सुंदर है। उसकी ज़िन्दगी में सैय्यद, नन्दलाल, अकलंक, जारहीन, कुलकर्णी, वान आदि अनेक पुरुष आते हैं। उसने हर बार हर किसी से प्यार किया, परन्तु वान को छोड़कर सबने उसे धोखा ही दिया। पूरे उपन्यास में वह नियति के हाथ का मात्र खिलौना ही बनकर रह जाती है। "सब रंजना के पास इसी तरह से आए जैसे रंजना का शरीर उनके पुरुष शरीर का ऋण था। सब ब्याज लेकर चले गए, कुछ लोगों ने मूल धन के आधार पर कुछ दिनों व्यापार किया और रंजना ने विद्रोह नहीं किया, बल्कि समझौता किया।"[85] इस प्रकार सौंदर्य के कारण शोषण का शिकार बनने वाली रंजना आधुनिक युग के नारी शोषण का प्रतिनिधित्व करती है। यह उपन्यास अकलंक रंजना की कोमल भावनाओं, स्वप्निल आशाओं और मृदुल संवेदनाओं का प्रतीक है। अब वह उसके जीवन के डूबते मस्तूल का प्रतिबिम्ब है।

---

[84] डूबते मस्तूल- नरेश मेहता, पृष्ठ 101

[85] डूबते मस्तूल- नरेश मेहता, पृष्ठ 130

संयुक्त परिवार के विघटन और एकल परिवार की स्थापना ने व्यक्तिवादी विचारधारा को बढ़ावा दिया। मनुष्य का दायरा संकुचित होता जा रहा है और भौतिक उन्नति के प्रति आस्था उसको और अधिक स्वार्थी बनाती जा रही है। नरेश मेहता के 'यह पथ बंधु था' में संयुक्त परिवार के विभिन्न पहलुओं का पर्दाफाश हुआ है। परिवार के कमाऊ सदस्य स्वतन्त्र हो जाना चाहते हैं। उपन्यास में पिता कहते हैं कि दुनिया भर में छल प्रपंच है, लेकिन वह मेरी समझ में तो नहीं आता। उस परिवार के सदस्यों में भी हम इस घुटन की झलक देख सकते हैं। अधिकांश सदस्य वहाँ घुटकर जी रहे हैं। वे सब किसी न किसी प्रकार मुक्ति चाहते हैं। इसलिए एक दूसरे से संघर्ष शुरू करते हैं। अंत में पिता यह कहने के लिए विवश हो जाता है "नाक भौं सिकोड़कर किसी को रहने की ज़रूरत नहीं। जहाँ समाएँ, वहीं जाएँ। किसी को यहाँ देहात जैसा लगता है। इस घर में लोगों के मिज़ाज ही नहीं मिलते।"[86] परिवार में सब के सब बदल गए हैं। इसके बीच पुरानी पीढ़ी का वह प्रतिनिधि सदस्य पिता एक विशेष प्रकार के तनाव का शिकार बन जाता है। सदस्यों को मिलाने के प्रयत्न में स्वयं शिथिल हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नरेश मेहता के उपन्यासों में आधुनिकता बोध का प्रतिफलन हुआ है। बहुत ही बारीकी से उन्होंने आधुनिक जीवन को अपने उपन्यासों में उकेरा है।

1.1.2 शशि प्रभा शास्त्री (1923)

सन् 1923 में मेरठ में जन्मी श्रीमती शास्त्री हिंदी कथा साहित्य की बहुविद् रचनाकार हैं। वे एक आधुनिक संवेदनशील लेखिका हैं। उनके उपन्यास मुख्य रूप से कथ्य की विविधता

---

[86] यह पथ बंधु था- नरेश मेहता, पृष्ठ 71

के लिए जाने जाते हैं। 'वीरान रास्ते और झरना' शशि जी का पहला उपन्यास है। यह उपन्यास हीन भावना से त्रस्त युवती एवम् अनमेल विवाह से उपजे दुष्परिणामों पर आधारित है जो प्रेमचंद के यथार्थवादी उपन्यासों की कड़ी कहा जा सकता है। नायिका अचला अपनी माँ और चाचा के अवैध संबंधों के कारण हीन भावना से ग्रस्त हो जाती है और आवारा लड़के अमर से निकटता बढ़ाती है। अचला इस हीन भावना से ग्रसित है कि वह खराब माँ की बेटी है। अतः वह किसी का घर नहीं बसा सकती। इसलिए वह अमर जैसे आवारा लड़के का साथ जान-बूझ कर पकड़ती है। अंत में वह अपने पूर्व प्रेमी शैलेन्द्र जो विदेश से ऊँची डिग्री लेकर आता है, उसके साथ विवाह में बँध जाती है।

दो पुरुषों और एक नारी के त्रिकोणात्मक प्रणय को कथ्य का आधार बनाकर लिखा गया 'नावें' उपन्यास अतीत जीवन की व्यथा में आज के जीवन से असामंजस्य की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। मालती उपन्यास की नायिका है जो अपने जीवन के प्रारम्भिक पड़ाव में पारिवारिक उपेक्षा के बावजूद अपने पैरों पर खड़ी होती है। सोम जी नामक व्यक्ति के व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाती है और उससे गर्भधारण कर लेती है, परन्तु सोम जी समाज के भय से उसे सुदूर भौतिक सुख सम्पन्न स्थान पर रखना चाहते हैं, लेकिन मालती इंकार कर देती है। बाद में वह बच्ची को जन्म देती है और आधुनिक विचारों वाले युवक विजयेश से विवाह करती है। परन्तु मालती के विजयेश के साथ असमर्पण के कारण दोनों के मध्य दाम्पत्य में ठहराव, अवसाद, निराशा के भाव घर कर लेते हैं। कुल मिलाकर इस उपन्यास में "मनोविज्ञान की सेक्स फ्रिजिडिटी का संकेत परोक्ष रूप से है।"[87]

[87] शशिप्रभा शास्त्री का कथा साहित्य:- डॉ. कविता चाँदगुडे, पृष्ठ 147

उनका तीसरा उपन्यास जो हमें आधुनिकता बोध से सम्पृक्त दिखाई देता है ,वह है 'ये छोटे महायुद्ध'। इसमें पीढ़ी अन्तराल के कारण उपजी संघर्ष-गाथा है। उपन्यास की नायिका गार्गी समयानुसार अपने व्यवहार को बदलकर देश कालानुरूप नहीं कर पाती, फलस्वरुप अपनी संतानों के साथ आपसी टकराव का सामना करती है।" गार्गी और लोपा दो पीढियों का, वैचारिक स्तर पर दो वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिनके मध्य अनावश्यक टकराव रहता है।"[88] मूलतः यह उपन्यास पुरानी और नई पीढ़ी के आपसी वैचारिक सामंजस्य के संघर्ष की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है।

आधुनिक समय में असफल दाम्पत्य जीवन भी एक बड़ा विषय बनकर हमारे सामने आया है। पति की उपेक्षा के कारण असफल दाम्पत्य जीवन के कारण स्त्री विद्रोह की विषय वस्तु 'उम्र एक गलियारे की' उपन्यास में सुनंदा के रूप में अधिकार सचेता नारी को चित्रित किया गया है। नायिका सुनंदा पति व मोहन देवेश के मध्य झूलती है। यहाँ हम पाते हैं कि लेखिका सुनंदा के माध्यम से कुछ बदलाव की आशा रखती हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि "हमारे यहाँ पुरुष और स्त्रियों के लिए पवित्रता के जो अलग अलग मानदंड हैं, उनके पुनर्विचार की अपेक्षा रखती है।"[89]

'खामोश होते सवाल' पति प्रताड़ना से सचेत स्त्री चेतना का उपन्यास है। उपन्यास की नायिका अनुराधा सदियों से खोखली सामाजिक मान्यताओं, रीति रिवाजों परम्परागत बंधनों से जकड़ी त्रस्त नारी को मुक्त कर नारी अधिकारों के प्रति सचेत बनाती है। असहाय, निराश्रित

---

[88] प्रकर, मार्च 1999, पृष्ठ 36

[89] प्रकर, सितंबर 2000, पृष्ठ 42

स्त्रियों के लिए 'नारी निलयन' बना,जो विधवा, परित्यकता, हत्भाग्या स्त्रियों को आश्रय दे, उन्हें स्वालम्बन का पाठ पढ़ाती है। शास्त्री जी परम्परागत पुरुष अधिकारों को सेठ रूपचंद के इस कथन से नकारती है "बेटा मेरा दाह संस्कार मेरा यह बेटा(अनुराधा की ओर संकेत) करेगा।"[90]

'कर्करेखा' उपन्यास में मध्यवर्गीय ऐसी स्त्री की व्यथा कथा का चित्रण है जो विडम्बनापूर्ण जीवन यापन करने के लिए शापित है, जो पति उपेक्षा एवं स्वयं के अकेलेपन से आहत है। और आधुनिक समय में हम देखते हैं कि बहुत से उपन्यासों के कथ्य इन्हीं विषयों के इर्द-गिर्द हैं परन्तु इसे चित्रित करना आवश्यक हो गया है, क्योंकि यह अकेलापन मात्र एक व्यक्ति का नहीं है बल्कि आज बहुत से लोग स्त्री व पुरुष दोनों ही इस आधुनिकता बोध से प्रभावित हैं। और यह उपन्यास आधुनिकता बोध का एक अच्छा उदाहरण है।

1.1.3 मोहन राकेश (1925)

"जीवन बोध, युग-बोध और शिल्प की दिशा में राकेश ने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं के क्षेत्र में विशिष्ट एवं मौलिक योगदान दिया है। वे अपने युग के समर्थ प्रतिष्ठित और प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकारों में हैं। उनकी सर्वाधिक प्रतिभा कहानी और नाटकों के माध्यम से प्रस्फुटित हुई। उसके बाद ही उन्होंने उपन्यास, एकांकी, निबंध-रचना जैसे अन्य विधात्मक साहित्यिक रूपों को अपनाकर एक कुशल कलाकार की बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया।"[91]

---

[90] खामोश होते सवाल:- शशिप्रभा शास्त्री, पृष्ठ 215

[91] मोहन राकेश:- व्यक्तित्व एवं कृतित्व: डॉ. धनानन्द एम. शर्मा 'जदली' पृष्ठ 48

स्वातंत्र्योत्तर महानगरीय वातावरण में मानवीय संबंधों की अर्थहीनता और अकेलेपन की अनुभूति को रचनाकारों ने अपनी रचना का विषय बनाया है। दिल्ली जैसे महानगर में व्यक्ति अपने को अकेला महसूस करता है। सभी अपने को तथा दूसरों को अँधेरे में भटकता हुआ पाते हैं। मोहन राकेश का उपन्यास 'अँधेरे बंद कमरे' का मधुसूदन कहता है "मैं नौ साल के बाद दिल्ली आया तो मुझे महसूस हुआ जैसे मेरे लिए यह एक बिल्कुल नया और अपरिचित शहर हो।"[92]

हरबंस अपने मित्रों के साथ रहकर भी खालीपन के बोध से पीड़ित है। वह निर्जीव कागज़ के टुकड़े से जुड़ना चाहता है। वह कहता है "एक अजीब बेबसी सी महसूस होती है। मेरा मन जैसे शिकंजे में फँसा हुआ है, जो मेरी कोशिश से टूट नहीं पाता।"[93]

दिल्ली की प्रख्यात पत्रकार सुषमा भी अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए किसी से जुड़ने की छटपटाहट में है। रागात्मक सम्बन्ध ही पति-पत्नी के बीच के रिश्तों को एक मजबूत आधार प्रदान करता है, जो आज के भौतिकवादी माहौल में क्षीण होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में पति-पत्नी एक दूसरे से कट जाते हैं और पारिवारिक जीवन एक अभिशाप बन जाता है। 'अँधेरे बंद कमरे' में पति-पत्नी के विघटन एवं मिलन की त्रासद स्थिति को उभारा गया है। पारिवारिक जीवन हरबंस और नीलिमा के लिए बोझ बन जाता है। हरबंस और नीलिमा ने प्रेम विवाह किया था। लेकिन बरसों एक साथ रहने पर भी वे एक दूसरे को न समझ सके। समय की रफ्तार के साथ दोनों के बीच के प्रेम की धारा सूख गई। इस उपन्यास में आज के विवाहित जीवन के संघर्षों को उभारा गया है। इसमें नीलिमा, हरबंस और मधूसूदन तीनों की

---

92 अँधेरे बंद कमरे- मोहन राकेश, पृष्ठ 36

93 वही, पृष्ठ 38

ज़िन्दगी अँधेरे बंद कमरे में है। ये एक दूसरे से भिन्न, अलग-अलग व्यक्तित्व लेकर अपने सीमित दायरे में रहने के लिए अभिशप्त हैं।

'न आने वाला कल' उपन्यास भी आधुनिकता बोध से संपृक्त है, इस उपन्यास का एक पात्र मनोज अकेलेपन की यंत्रणा को शोभा से शादी करके खत्म करना चाहता है। लेकिन मनोज और शोभा पति-पत्नी के रूप में एक दूसरे से प्रेम नहीं कर पाते। मनोज का मत था "उसकी नज़र में मैं अब अकेला आदमी था जिसका घर उसे सँभालना पड़ रहा था, जब कि मेरे लिए वह किसी दूसरे की पत्नी थी, जिसके घर में मैं एक बेतुके मेहमान की तरह टिका था।"[94]

इसी तरह उपन्यास के अन्य पात्र जिमी तथा उसकी पत्नी, एक साथ रहने पर भी, कोसो दूर रहते हैं। और मिस्टर टोमी ह्विसलर और उसकी पत्नी एक दूसरे की उपस्थिति में अजनबी की तरह रहते हैं। यहाँ व्यक्ति का अकेलापन और पति-पत्नी के बदलते सम्बन्ध देखने को मिलते हैं।

पश्चिमी महानगरीय सभ्यता की यंत्रणा से संत्रस्त बहुसंख्यक लोग सहअस्तित्व और सम्प्रेषण के अभाव में अजनबी जीवन बिताने के लिए अभिशप्त हैं। 'न आने वाला कल' का मनोज आधुनिक पुरुष है। वह किसी की बनाई शर्तों पर जीना नहीं चाहता। "वह शादी से पहले भी घर की किसी चीज़ से जुड़ा हुआ महसूस नहीं करता था। उसे अपना घर ही एक धर्मशाला सा लगता था जहाँ रात बितानी पड़ती थी।"[95] मनोज का त्यागपत्र उस व्यवस्था के प्रति विद्रोह था जो अपनी स्वतन्त्रता के लिए विध्वंसकारक थे।

---

[94] न आने वाला कल- मोहन राकेश, पृष्ठ 25

[95] न आने वाला कल- मोहन राकेश, पृष्ठ 16

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'न आने वाला कल' उपन्यास का मनोज अपने जीवन में संबंधों की एकरसता और औपचारिकता महसूस करता है। उसके लिए समय जैसे ठहरा हुआ है, जिसे काटना कठिन है, इसी बोरियत और अकेलेपन से मुक्त होने के लिए वो विवाह कर लेता है।

समग्रत: देखें तो मोहन राकेश के ये दोनों ही उपन्यास आधुनिकता बोध से उपजी स्थितियों, अकेलापन और अजनबियत, संबंधों का टूटना आदि को बहुत ही बारीकी से दर्शाते है तथा आधुनिक मनुष्य के मन की परतों को खोल कर पाठकों के समक्ष रखते हैं।

1.1.4 कृष्णा सोबती (1925)

हिंदी कथा साहित्य के क्षेत्र में कृष्णा सोबती का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं में चर्चित रही हैं। इन्होंने आधुनिक नारी की बदलती हुई मनः स्थिति, दाम्पत्य सम्बन्ध, कामजन्य प्रेम तथा नारी मनोविज्ञान आदि को व्यापक फलक पर दर्शाया है। सोबती जी के कथा साहित्य में आधुनिकता बोध से संपन्न पात्र चित्रित हैं। पात्रों के सन्दर्भ में स्वयं सोबती जी के विचार सराहनीय हैं "किसी भी रचना की प्रामाणिकता केवल लेखक की जीवन-दृष्टि से ही जुड़ी बँधी नहीं होती। उनकी रचनात्मक उड़ान की सामर्थ्य पात्रों की मांस-मज्जा, मिज़ाज, स्वभाव और हड्डी की मजबूती में भी छिपी रहती है।"[96] सोबती जी के पात्र परम्परावादी मान्यताओं का खंडन कर आधुनिकता बोध का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उनका पहला उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' की नायिका पाशो का जीवन, उसकी माँ की छत्रछाया से दूर ननिहाल में बीतता है। किन्हीं अज्ञात कारणों से उसकी माँ शेखों के यहाँ जा

---

[96] समकालीन भारतीय सौन्दर्य साहित्य- अक्टूबर- दिसम्बर 1994, पृष्ठ 129

बसी है। पाशो के जीवन की दिनचर्या आये दिन गाली-गलौच, मार-पीट तथा कुटने-पिसने से आरम्भ होती है क्योंकि माँ के लिए कलंक का ठीकरा पाशो के सिर पर है। शिक्षा पाने का कोई अधिकार उसे नहीं है और बढ़ती उम्र की सहज ललक को भी बड़ी क्रूरता से कुचलने की कोशिश की जाती है। यह अतिरिक्त सतर्कता पाशो के व्यक्तित्व निर्माण के उन सभी तत्वों को कुंठित करती है जिससे उसकी सोच या विवेक को आगे बढ़ने की दिशा मिलती है। उसका जीवन इन प्रतिकूल दबावों में असामान्य बन जाता है। वह "लेटी-लेटी सोचती रही क्या है जो आये दिन गालियाँ खाती हूँ। फिर बाँहे सिर पर फैलाकर अंगड़ाई ली और दोनों ओर के ऐन बीचों-बीच लटकती चाँदी की ज़ंजीर देख एक बार फिर मुस्कुरा पड़ी। कोई कुछ भी कहे मेरी बला........।"[97]

पाशो की मानसिकता में आने वाले परिवर्तन आधुनिकता बोध के एक महत्वपूर्ण लक्षण मनोविज्ञान का उद्घाटन करते हैं। उपन्यास में आगे हम देखते हैं कि पाशो नानी की इच्छा के विरुद्ध घर से भागने का निर्णय लेती है और उसके परिणामों से भी नहीं डरती। अपने निर्णय के परिणामों को स्वीकार करने का साहस उसके पास है।

'मित्रो मरजानी' उपन्यास की मित्रो- सुमित्रावन्ती एक विपुल वासनावती स्त्री है। वह सभ्य परिवार की बहू है परन्तु बहू बनकर संकीर्ण इच्छाओं व बँधे अनुशासन में जीने का रिवाज उसे नहीं भाता। मित्रो का अपने पूरे नारी-बोध के साथ खड़ा होना ही आधुनिकता बोध है। सोबती जी ने मित्रो के चरित्र को आदर्श की गरिमा एवं सतीत्व की परम्परा से हटकर यथार्थ और वास्तविकता की ज़मीन पर खड़ा किया है। एक तरफ उसके अंदर काम भावना की प्रमुखता पाठकों को चौंकाती है तो दूसरी तरफ उसके अंदर छिपे गुण, दया, ममता, विचार करने की शक्ति, अपनी आवाज़ को उसकी भाषा से स्पष्ट करने की शक्ति आदि उसके अस्तित्व

---

[97] डार से बिछुड़ी:- कृष्णा सोबती, पृष्ठ 10

की पहचान कराते हैं। एक तरफ मित्रो का अपनी माँ के साथ का बहनापा एवं सहेली जैसा बर्ताव चौंकाता है तो दूसरी तरफ वासना से सुलगती माँ की आँख पहचानने की शक्ति उसके आधुनिकता बोध की परिचायक है। लेखिका 'मित्रो' के बहाने स्त्री को उसकी इच्छाओं के लिए जीने, जूझने और लड़ने का हथियार देती हैं। 'मित्रो' एक ऐसा किरदार है जो खुद से प्यार करती है और अपनी इच्छाओं को पूरा करने में संकोच नहीं करती। यानी सही दिशा प्रदान करने वाले परम्परा के प्रगतिशील तत्त्व ही आधुनिकता बोध हैं।

'यारों के यार' सोबती जी का लघु उपन्यास है। मिस तमाशा इस उपन्यास की एक प्रमुख पात्र है। यह आधुनिक एवम् आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न नारी है। बस पैसा बटोरना ही इसका लक्ष्य है। मिस तमाशा पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति की अंधानुकरण करने वाली ऐसी नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जो अधिक आधुनिक बनने की चाह में अपनी परम्परागत छवि एवं नारी की महत्ता को भी गवाँ बैठी है। मिस तमन्ना भी 'यारों के यार' उपन्यास की एक पात्र है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है लोगों की तमन्नाएँ पूरी करना ही मिस तमन्ना के नाम की सार्थकता है। मिस तमन्ना कॉलगर्ल है अर्थात् आधुनिक युग की परिष्कृत वेश्या। आधुनिकता के कुछ ऐसे भी परिणाम हमारे सम्मुख उपस्थित हैं जहाँ सदियों से पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी नारी जब स्वतन्त्र होकर घर से निकली है, तो अधिक स्वतन्त्रता एवं धन के लालच में विवेकहीन होकर उच्छृंखल हो गई। ये दोनों नारी पात्र इसी के प्रतीक हैं।

'सूरजमुखी अँधेरे के' उपन्यास की रत्ती बचपन से ही संघर्ष करती हुई आगे बढ़ी है। वह मानसिक रूप से पीड़ित है। बचपन में हुआ बलात्कार 'सैक्सुअल फ्रिजिडिटी' ग्रंथि का नाम उसके मानस में घर कर गया है। लेखिका रत्ती के रोग का उपचार भी मनोवैज्ञानिक विधि से ही करती है। वह जिस कार्य की भयावहता से घायल हुई थी उसी कार्य की स्निग्धता से उसकी

क्षतिपूर्ति होती है। दिवाकर के सानिध्य में रत्ती पूर्णता को प्राप्त कर लेती है। रत्ती के चरित्र में मनोवैज्ञानिक आधुनिकता बोध सम्पन्न विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

सोबती जी का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है 'ऐ लड़की'। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र अम्मू है। अम्मू ने पराम्परागत नारी के रूप में भरपूर जीवन जिया है। लेकिन लम्बी बीमारी के कारण जीवन और मौत के संघर्ष में झूल रही है। अम्मू की मुख्य विशेषता है उसकी जिजीविषा। वैसे तो अम्मू ने काफी हर्ष एवं उल्लास से जीवन गुजारा है लेकिन इसके बावजूद अम्मू की जिजीविषा, युग की चेतना एवं नवीन दृष्टि के प्रति जुड़ने से हुई है। परम्परा एवं आधुनिकता के तत्त्वों से निर्मित अम्मू की नवीन चेतना ही आधुनिकता बोध है। जो उपन्यास को पढ़ते हुए हमें नज़र आती है। अम्मू का अपनी बेटी के ज़िन्दगी के ऊपर व्यंग्य करना आधुनिकता के चकाचौंध में परम्परा को महत्त्व देना है "इस चमत्कार का तुम्हें क्या पता। इसकी जानकारी किताबों में नहीं मिलती। दीवारों को देखते चले जाने से उन पर तस्वीरें नहीं खिंचती।......, न लड़की सेमल के पेड़ से भी कभी सेव उतरते होंगे।"[98]

अम्मू के माध्यम से सोबती जी नारी जीवन के आधुनिक पक्ष पर सवाल खड़ा करती हैं कि क्या नारी घर-परिवार के बंधन में बँधकर अपनी निजता नहीं साबित कर सकती। यह कुछ न कर पाने का अफ़सोस ही अम्मू को व्यर्थता बोध और अकेलापन देता है। स्त्री की नियति यही है कि वह पूरा जीवन किसी की माँ, पत्नी के रूप में बिताकर अंत में अकेली हो जाए। हम पाते हैं कि अम्मू के व्यर्थता बोध में पलायन की भावना न होकर अदम्य जिजीविषा ही आधुनिकता बोध है। जीवन की अशक्तता की घड़ियों में कुछ न कर पाने का बोध आज के नवयुवकों-युवतियों के लिए चुनौती का विषय है।

---

[98] ऐ लड़की:- कृष्णा सोबती, पृष्ठ 11

अतः कृष्णा सोबती के साहित्य में प्रेम के क्षेत्र में रोमांटिक बोध से आधुनिक बोध की ओर तथा आत्मीयता से शारीरिकता की ओर आयी नारी का चित्रण है। नारी जीवन की परिवर्तित मनः स्थितियों एवं उसकी दमित इच्छाओं को खुले रूप में साहस के साथ उन्होंने अपनी रचनाओं के ज़रिए अभिव्यक्ति दी है।

1.1.5 निर्मल वर्मा (1929)

निर्मल वर्मा आधुनिक हिंदी उपन्यास के एक सशक्त रचनाकार हैं। निर्मल वर्मा हमें नागरिक समाज के, शहरी लोक समाज के सर्वप्रथम महत्वपूर्ण स्वतन्त्र लेखक और चिन्तक लगते हैं। वे पाश्चात्य देशों में रहे हैं और वहाँ के साहित्य से भली भाँति परिचित हैं।

निर्मल वर्मा का पहला उपन्यास 'वे दिन' (1964) में लिखा गया। यह उपन्यास अपनी नवीन संवेदना और आधुनिकता प्रस्तुत करता है। 'वे दिन' का अकेलापन, अजनबीपन और अलगाव-बोध उस परिवेश की देन है जहाँ युद्धोपरान्त शांति के दिनों में भी युद्ध की परछाइयाँ पात्रों का पीछा नहीं छोड़ती। अकेलेपन की संवेदना को अभिव्यक्त करने वाला यह उपन्यास निर्मल वर्मा के उन अनुभवों का लेखा-जोखा है जो उन्होंने विदेशों में रहकर वहाँ के परिवेश को आत्मसात करके प्राप्त किया है। इस उपन्यास में सभी पात्र अकेलापन भोगने के लिए बाध्य हैं यद्यपि वे एक दूसरे का अकेलापन बाँटने का प्रयास करते हैं।

उनका अगला उपन्यास 'लालटीन की छत' 1970 से 1974 तक चार वर्षों में कभी लंदन, कभी दिल्ली, कभी शिमला में लिखा गया है। इसमें एक किशोर लड़की काया के शारीरिक परिवर्तन और परिवेशगत स्थितियों की रहस्यमयता उभरती है। आगत यौवन का आकर्षण, अकेलापन, भोलापन, आतंक और भ्रम का ताना-बाना लेकर रचा गया यह उपन्यास अनुभूतियों संवेदनाओं और कलात्मकता का अद्भुत संयोजन लिए हुए हैं।

तीसरा उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' भी आधुनिकता बोध से सम्पृक्त उपन्यास है। इसमें थियेटर के सम्मोहन में खोए हुए कुछ युवक-युवतियों की कथा है। इस उपन्यास के पात्रों को नाटक और असली ज़िन्दगी में कोई अंतर नहीं दिखाई देता; यानी नाटक और जीवन की भूमिका आपस में इतनी घुलमिल गई है कि उसे अलग करना या अलग होना उन्हें गलत लगने लगता है। यह उपन्यास मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी वर्ग से जुड़ा है और दिल्ली में घटता है।

निर्मल वर्मा उन विरले कथाकारों में से है जो मानव को शेष सृष्टि के अनंत विस्तार से जोड़कर देखते हैं। उनके पात्रों का मंथन इसी सच की रचना में साक्षी है। 'रात का रिपोर्टर' व्यवस्था और स्वतंत्रता की परस्पर विरोधी अभिव्यक्ति से युक्त है, जो आधुनिक युग की मूल समस्या है जिसमें आज की राजनीतिक विसंगतियों के शिकार बुद्धिजीवी रिपोर्टर रिशी की चेतना पर पड़ने वाले युगीन दबावों की कथा कही गई है। वास्तव में 'रात का रिपोर्टर' आपातकाल के वातावरण का आतंकमय उल्लेख है, इसमें बाहरी राजनीतिक दबावों और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से युवा वर्ग के खंडित होते व्यक्तित्व की कथा का चित्रण हुआ है।

उनके उपन्यास 'अंतिम अरण्य' में एक विशिष्ट फॉर्म का प्रयोग है। उपन्यास की केंद्रीय चिंता मृत्यु, अकेलापन, बीत जाने का अवसाद, एलीट बुजुर्गों का अवसाद और अतीत- स्मृतियों से जुड़ी चिंता है। यह उपन्यास जीवन और मृत्यु के प्रश्नों से जूझता है। बुढ़ापे और मृत्यु से जुड़ी उनकी संवेदनाओं का अंकन उपन्यास का मूल विषय है। मृत्यु की छाया पूरे उपन्यास पर भले ही दिखाई देती है, पर उपन्यास के पात्र मृत्यु से भयाक्रांत नहीं हैं। वे मृत्यु को सहजता से स्वीकार करते हैं।

निर्मल वर्मा के इन सभी उपन्यासों में देश की स्वतन्त्रता के बाद देश की राजनीतिक परिस्थितियों के साथ बदलती हुई सामाजिक स्थिति और आधुनिक जीवन शैली में उभरते

अकेलेपन और अजनबीपन के हावी हो जाने से व्यक्ति संबंधों में गहराती आत्मीयता के टूटन का उल्लेख हुआ है। निर्मल वर्मा ने अपने समय और अपने समय की कला को बदलने की महत्त्वपूर्ण कोशिश की थी। बहुत कम लेखक ऐसे होते हैं जो अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने निजी संसार को गढ़ने की आकांक्षा रखते हैं और उनमें भी ऐसे बहुत कम लेखक होते हैं जो अपने इस स्वप्न को जी पाते हैं। निर्मल वर्मा निश्चय ही उन रचनाकारों में आते हैं। मानवीय संबंधों का टूटन, अकेलापन, मृत्युबोध, महानगर बोध, अस्तित्व की तलाश जैसी अनेक आधुनिक विचारधारा की विशेषताएँ निर्मल वर्मा के उपन्यासों में द्रष्टव्य है।

1.1.6 राजेंद्र यादव (1929)

स्वातंत्र्योत्तर सुप्रसिद्ध हिंदी लेखक राजेंद्र यादव का जन्म 28 अगस्त, 1929 को उत्तर प्रदेश के आगरा शहर में हुआ। आगरा के राजा की मंडी नामक मुहल्ले में उनका पैतृक घर है और इसी घर में अपने माता-पिता की प्रथम संतान के रूप में राजेंद्र का जन्म घरवालों के लिए आनन्दोत्सव ही था।

उनके समय तक स्त्री-शिक्षा के प्रभाव से आर्थिक स्वावलंबन से युक्त स्त्रियाँ समाज में आगे बढ़ने लगी थीं। वे परिवार की आमदनी में योगदान करने लगी थीं और जो ऐसा नहीं कर पा रही थीं वे अपनी जीविका की खोज में घर से बाहर निकल पड़ी थीं। राजेंद्र यादव का 'उखड़े हुए लोग' स्त्रियों के इसी जीवन का चित्रण करता है। वे इस कथन का कि ‘स्त्री घर की रानी है, उसकी दुनियाँ चहार दिवारी के भीतर है’ – जैसे वाक्यों का खंडन करते हुए लिखते हैं- "ऐसे वाक्यों को आप पुरानी संस्कृति के रट्टू तोतों के लिए छोड़ दीजिये। इसका सीधा अर्थ, यह हुआ न, प्रमुख कार्य करने वाला पुरुष और स्त्री केवल गति बनाए रखने के लिए

मोबिल आयल हो गई।"[99] वास्तव में युगीन परिस्थिति के साथ नारी को कितना संघर्ष करना पड़ा है, इसकी ओर इशारा करना उपन्यासकार का लक्ष्य है। 'उखड़े हुए लोग' वैवाहिक जीवन की रूढ़ियों को तोड़ने वाला उपन्यास है। नायक शरद और नायिका जया रूढ़ि बद्ध समाज की मान्यताओं के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं। वे वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को तोड़कर वैवाहिक जीवन का युगानुरूप समाधान प्रस्तुत करते हैं। इस दृष्टि से दोनों क्रांति के पथ पर हैं। शरद का कथन है "हम लोग सम्मिलित जीवन बिताने का आज निश्चय कर रहे हैं। प्रकृति को अनिवार्य मानकर दो इकाइयों के सामूहिक जीवन की सामाजिक स्वीकृति का नाम विवाह है। विवाह के सम्बन्ध में मैं हर टीम-टाम के विरूद्ध हूँ।"[100] इस प्रकार नारी शोषण की विस्तृत भूमिका प्रस्तुत करते हुए राजेंद्र यादव कहना चाहते हैं कि स्त्री-पुरुष संबंधों में स्वस्थ मानसिकता का रूपायन आधुनिक संदर्भ में अनिवार्य है।

उनका दूसरा उपन्यास 'सारा आकाश' में पारिवारिक तनाव के एक पहलू का चित्रण हुआ है। संयुक्त परिवार के प्रति उपन्यासकार आस्थावान नहीं है। आज के संदर्भ में वह प्रासंगिक नहीं। अगर कहीं संयुक्त परिवार चलता है तो कोई संदेह नहीं कि उसके भीतर अनेक छोटी-छोटी इकाइयों का विकास हो रहा है। यानी पूरे माहौल के भीतर ही भीतर तनावग्रस्त व्यक्ति जीने के लिए विवश है। वर्तमान संदर्भ में संयुक्त परिवार की इस अनुपयुक्तता की ओर लक्ष्य करके शिरीष भाई यूँ कहते हैं- "आज की आर्थिक स्थिति में संयुक्त परिवार नहीं चल सकता। अगर चलेगा भी तो ऊपर से देखने में, चाहे जो हो लेकिन अंदर से उसमें छोटे परिवारों की कई इकाइयाँ बन जायेंगी। आप सोच नहीं सकते कि यह जरा सी भावुकता कितने भयंकर

---

[99] उखड़े हुए लोग: राजेंद्र यादव, पृष्ठ 22

[100] उखड़े हुए लोग: राजेंद्र यादव, पृष्ठ 28

परिणामों को जन्म दे रही है। रात दिन हैरान होंगे, परेशान होंगे।"[101] इसलिए शिरीष भाई संयुक्त परिवार के भीतर निहित घुटन एवं संत्रास की ओर इशारा करते हैं।

'सारा आकाश' राजेंद्र यादव का एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें तीन दम्पति हैं, धीरज और उसकी पत्नी, समर और प्रभा, मुन्नी और उसका पति। उपन्यास का आधा भाग समर और प्रभा का दाम्पत्य जीवन और उसकी टकराहटों की कहानी है। दाम्पत्य जीवन के बारे में शुरू से ही नायक सोचता है, "पता नहीं किस तरह की लड़की को मेरे गले में डाल दिया गया है? कैसे चलेगी ज़िन्दगी? फिर लगा जैसे कोई अज्ञात शक्ति शरीर के कण से पानी निचोड़ कर आँखों की राह उलीचे दे रही है।"[102] दोनों में समझौता न होने का मुख्य कारण उनका अहं ही है। प्रभा सृजनशील सद्गृहिणी होते हुए भी अपने अहं पर ज़्यादा जोर देने वाली नारी है। उसी के समान समर भी आदर्शवादी संस्कृति का पक्षपाती होते हुए भी अपने पर गर्व करने वाला पुरुष है। एक दिन अनबोलेपन की स्थिति टूट जाती है। क्योंकि उन दोनों के मन में प्रेम की चाह है। समस्या यही है कि कौन पहले कहेगा। दोनों अपने अहं के आवरण के भीतर घुट रहे हैं। उसने सीधे मेरी आँखों में देखकर कहा, "आँखों से आँसू खौल रहे हैं। उसने दोनों हाथ बढ़ाकर मेरे कंधों को पकड़ लिया और सारी ताकत न जाने किस उन्मत्त आवेग से झँझोड़ती हुई बोली-"बताओ मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? क्या कसूर किया है मैंने तुम्हारा.......एक दूसरे से लिपट हम दोनों रो रहे थे, बेहोश बेसुध।"[103]

---

[101] सारा आकाश: राजेंद्र यादव, पृष्ठ 214

[102] वही, पृष्ठ 35

[103] सारा आकाश: राजेंद्र यादव, पृष्ठ 109

उपन्यास के दूसरे दम्पति हैं - मुन्नी और उसका अत्याचारी पति। मुन्नी का चरित्र गंभीर है। पति के अत्याचार सहन करते हुए वह शांत मुद्रा में गृहस्थी में संलग्न हो जाती है। वह स्वयं एक क्षुब्ध दाम्पत्य जीवन का भार ढोती है। इसी वजह से उसे अपनी छोटी भाभी प्रभा से पूर्ण सहानुभूति है। पर जल्दी ही मुन्नी और उसके पति के साथ का सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो जाता है। पति एक दिन आकर मुन्नी को ले जाता है, वहीं उसकी मृत्यु भी हो जाती है, "गुलाबी कागज़ पर टाईप की हुई पट्टी चिपकी थी मुन्नी एक्सपायर्ड......... मुन्नी मर गई।"[104]

इस प्रकार राजेंद्र यादव अपने उपन्यासों में आधुनिकता बोध को लेकर पाठक के सम्मुख रखने में सफल रहें हैं। उनके उपन्यास में आधुनिकता के लगभग सभी पहलू हमें नज़र आते हैं। व्यक्ति की ऊब, घुटन से लेकर परिवार और दम्पति के बदलते संबंधों पर उन्होंने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है और आधुनिकता के बोध से अवगत करवाया है।

1.1.7 मन्नू भंडारी (1931)

समकालीन रचनाकारों में मन्नू भंडारी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनका उपन्यास 'आपका बंटी' पूरी तरह आधुनिकता बोध का प्रतिनिधित्व करता नज़र आता है। इस उपन्यास में मन्नू भंडारी ने आज के मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त तलाक की समस्या का वर्णन किया है। इस समस्या से उपजी एक जटिल समस्या तलाकशुदा दम्पतियों के बच्चों की है। लेखिका ने बंटी की मानसिकता, उसके दर्द, उसके अकेलेपन, उसके बिखराव आदि को आधुनिक सन्दर्भों में व्यक्त किया है। बंटी के माता-पिता का विवाह विच्छेद हो गया है। शकुन उच्च शिक्षित, कामकाजी नारी है। वह एक कॉलेज में प्रिंसिपल है। उसका पति अजय दूसरे शहर में रहता है। शकुन अंधविश्वास और रूढ़ परम्परा का विरोध करने का साहस रखती है। वह स्वतन्त्र जीवन

---

104 वही, पृष्ठ 261

जीना चाहती है। पति अजय दूसरी स्त्री मीरा से विवाह कर लेता है। उनके दाम्पत्य जीवन की दरार को संतान बंटी प्रयत्न करने पर भी नहीं भर पाता। कुछ दिन बाद शकुन दो बच्चों के पिता विधुर डॉ. जोशी से विवाह कर लेती है। बंटी डॉ. जोशी के घर में स्वयं को अपमानित महसूस करता है। वह अपने पिता अजय के पास चला जाता है। परन्तु वहाँ वह अपनी सौतेली माँ मीरा को भी अपनाने में अपने को असमर्थ पाता है। अतः उसे हॉस्टल भेज दिया जाता है। यहाँ बंटी की मनोवैज्ञानिक स्थिति के साथ, आधुनिक समाज की, दाम्पत्य जीवन की संक्रमित स्थिति को उजागर किया गया है। और ये सभी स्थितियाँ आधुनिकता बोध को दर्शाती हैं।

1.1.8 कमलेश्वर (1932)

औद्योगीकरण, बौद्धिकता के अतिरेक, यंत्रीकरण, दो महायुद्ध तथा अस्तित्ववादी चिंतन के फलस्वरूप जो स्थिति उत्पन्न हुई है उसका प्रतिबिम्ब सभी साहित्यिक विधाओं में देखा जा सकता है। आज का उपन्यासकार व्यक्ति की खोज में संलग्न है। उसके लिए आदमी और उसका अस्तित्व महत्वपूर्ण है। इसकी झलक तो हमें इससे पहले लिखे उपन्यासों में भी मिल जाती है किन्तु उनमें अभिव्यक्ति का स्तर वैसा नहीं रहा जैसा कि कमलेश्वर के 'डाक बंगला' उपन्यास में नज़र आता है। 'डाक बंगला' नामक उपन्यास में कमलेश्वर ने स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की एक नंगी तस्वीर खींची है। इरा ने अपने जीवन में अनेक पुरुषों के सामने आत्म समर्पण किया है, क्योंकि "वह सिर्फ आदमी से प्यार करती है। उसकी आत्मा का कोना-कोना यादों से भरा है।"[105] "मेरी आँखों में हर व्यक्ति की तस्वीर है जिसके साथ मैंने थोड़े दिन गुजारे हैं। बतरा

[105] डाक बंगला- कमलेश्वर, पृष्ठ 29

के यहाँ नौकरी करती है तो बतरा मेरा अपना हो गया। मैं वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रही थी, पर उसकी सामजिक सनद न मैंने ली थी और न बतरा ने लेने की सोची थी।"[106]

बतरा द्वारा धोखे से इरा का गर्भपात कराये जाने व नौकरी से निकाले जाने पर वह डॉ. चन्द्रमोहन के साथ रहती है। डॉक्टर की वृद्धावस्था के कारण उसकी काम-तृप्ति नहीं हो पाती। आर्थिक अभाव ने अगर इरा को गन्दी गली में भटकने के लिए विवश किया तो सुख सुविधा ने शीला को। शीला से इरा का परिचय बतरा के घर पर हुआ 'किंतु शीला वेड वाईफ टाईप की नारी है। शीला अपनी शारीरिक व मानसिक भूख मिटाने के लिए बीवी का नकाब लगाकार रहती है।"[107] 'डाक बंगला' एक ऐसी इरा की कहानी है जिसने जीवन में विमल, बतरा, सोलंकी और डॉक्टर चारों पुरुषों से प्रेम किया है। लेखक ने मूलतः इरा और तिलक को मंच पर प्रस्तुत किया है। कुछ समय के लिए सोलंकी भी सामने आता है, लेकिन कश्मीर यात्रा के दौरान अपनी ज़िन्दगी को इरा तिलक के सामने खोलकर रखती है। "मैंने पहले किसी से प्यार तो नहीं किया। पुरुष का यही सबसे बड़ा संतोष है, और हर बार मैंने अपने हर प्रेमी से यही कहा है कि तुम मेरी ज़िन्दगी में पहले हो तुम प्रेम हो।"[108]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कमलेश्वर के उपन्यास 'डाक बंगला' में आधुनिकता के आयामों को उभारा गया है। उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से आधुनिक मनुष्य के मन की व्यथा तथा संबंधों को दर्शाया है। इसके अतिरिक्त उनका उपन्यास 'काली आंधी' भी आधुनिकता बोध के अंतर्गत आता है।

---

[106] वही, पृष्ठ 30-31

[107] डाक बंगला- कमलेश्वर, पृष्ठ 65

[108] वही, पृष्ठ 75

1.1.9. मृदुला गर्ग (1938)

समकालीन महिला कथाकारों में मृदुला गर्ग एक विशिष्ट स्थान रखती हैं। इनके उपन्यास यौन-संबंधों को लेकर चलते हैं तथा उनमें जीवन की सच्चाई को प्रकट करने का प्रयास किया गया है।

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास की मनीषा अकेलेपन से बचने के लिए पति जीतेन से विवाह विच्छेद कर पुनर्विवाह करती है। फिर भी उसकी रिक्तता पूर्ण नहीं होती। तब वह रचनात्मक कार्य की ओर मुड़ती है। मन में उमड़ती-घुमड़ती भावनाओं को अभिव्यक्त करती है। आधुनिक व्यक्ति अपने ही दायरे के भीतर अकेलापन, अजनबीपन के दौर से गुजर रहा है। इस अकेलेपन के कारण उसमें संत्रास, घुटन, पीड़ा, ऊब, रिक्तता जैसे भाव पनपते हैं। 'उसके हिस्से की धूप' के कथानक में इन भावों की अभिव्यक्ति के द्वारा आधुनिक बोध की झलक मिलती है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास में 'मनु की रिचर्ड के साथ घनिष्ठता' यह पहलू विवाह-संस्था की अप्रासंगिकता को दर्शाता है। मनु का पति महेश आधुनिक मशीनी सभ्यता का अनुभव करता है, उसे भोगता है। मनु उससे शारीरिक रूप से जुड़कर भी आत्मिक रूप से जुड़ नहीं पाती। विवाह संस्था की अप्रासंगिकता को दर्शाते हुए लेखिका ने मनु और रिचर्ड का मिलन करवाया है। मनु और रिचर्ड दोनों शादीशुदा होकर भी असफल हैं। कथ्य में महेश-मनु के विवाह के बंधन को नकारा गया है लेकिन दूसरी ओर मनु-रिचर्ड विवाह-बन्धन को बरकरार रखना चाहते हैं। डॉ. आदित्य प्रसाद त्रिपाठी का इस सम्बन्ध में यह कथन है "आधुनिक संस्कृति की ऊब से उपजी प्रेम की यह परिणति भी एक दूसरी ऊब के जाल में उलझ कर रह गई है। जिस

प्रेम संस्कृति को उभारा गया है, उसकी घुटन से मनु जैसी नारी भले ही उबर गई हो, सभी नारियों के लिए वह संभव नहीं होगा।"[109]

हम देखते हैं कि लेखिका ने मनु-महेश के दाम्पत्य जीवन के माध्यम से आधुनिक पति-पत्नी के सम्बन्ध को, विवाहेत्तर संबंधों को बेलाग और बेलौस ढंग से अभिव्यक्त किया है।

मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब' उपन्यास आधुनिकता के नए प्रतिमानों के साथ उभरकर आता है। यहाँ कठगुलाब बाँझपन का प्रतीक है। आधुनिक विचारों ने कई विद्रूपताओं को जन्म दिया है और इसी कारण प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित हुए पाँच-पात्रों एक पुरुष और चार स्त्रियों को बाँझ दिखाया गया है। नैतिक-अनैतिकताओं की सारी सीमा रेखाओं को तोड़कर बन रहे अनैतिक सम्बन्ध जब वैद्यकीय क्षेत्र को ही चुनौती देते हैं तो इस उपन्यास के पढ़नेवालों को झकझोर देना स्वाभाविक है। स्त्री-पुरुषों के आधुनिक संबंधों की चर्चा करने वाला यह उपन्यास आधुनिक उपन्यासों की परम्परा में नए तेवर के साथ उपस्थित होता है।

1.1.10 ममता कालिया (1940)

ममता कालिया समकालीन महिला उन्यासकारों की श्रृंखला में एक सशक्त कड़ी हैं। उन्होंने अपने साहित्य में दाम्पत्य जीवन की अनेक समस्याओं को उठाया है। 'बेघर' ममता कालिया का पहला उपन्यास है जिसमें जीवन की विडंबनाओं के कारण पारिवारिक विघटन की गाथा लिखी है। यह उपन्यास पति-पत्नी के शारीरिक संबंधों पर केंद्रित है। इस उपन्यास में पति को आदर्शवादी और दूसरों पर शक करने वाला दिखाया गया है। यहाँ परमजीत को एक शकी व्यक्ति के रूप में दर्शाया गया है। वह संजीवनी पर शक करता है और इसी शंका में घिर

---

[109] औपन्यसिक समीक्षा और समीक्षाएं:- डॉ. आदित्य प्रसाद त्रिपाठी, पृष्ठ 67

कर संजीवनी से दूरियाँ बना लेता है और रमा नाम की एक लड़की से शादी कर लेता है। पर उनके दाम्पत्य जीवन में सदा एक खालीपन रहा। उनके विचार से परमजीत का जीवन विषाक्त हो गया है। ममता कालिया ने इस उपन्यास के माध्यम से समाज में व्याप्त उन रूढ़ियों पर चोट की है जो स्त्री के कौमार्य को लेकर फैली हुई हैं। ये रूढ़ियाँ अमानवीय और अवैज्ञानिक हैं।

'नरक दर नरक' उपन्यास में भी कुछ ऐसे ही आत्मीय संबंधों में विघटन के हादसे होते रहते हैं। इस उपन्यास में स्त्री की स्वतन्त्रता की चाहत और विवशता भी अभिव्यक्त हुई है। और यह भी दर्शाने की कोशिश है कि किस तरह एक पति-पत्नी अपने गृहस्थ जीवन को सही ढंग से जीने के लिए समाज में व्याप्त बेकारी, क्षोभ, कुंठा का सामना करते हैं। बाहरी वातावरण से पति-पत्नी का जीवन प्रभावित होता है। धन के अभाव के कारण भी दाम्पत्य जीवन में परेशानियाँ खड़ी हो जाती हैं। आर्थिक तंगी के कारण ही जगन और उषा में मनमुटाव रहने लगता है। जगन को जब भी कोई परेशानी होती है या कोई दुःख होता है तो उषा हमेशा उसके दुःख में शामिल होती है परन्तु जगन कोई ना कोई बात पिन की तरह उसे चुभो देता है। और उनका दाम्पत्य जीवन बुरी तरह प्रभावित हो जाता है।

ममता कालिया का महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'एक पत्नी के नोट्स' भी आधुनिकता को चित्रित करता है। इस उपन्यास के विषय में चंद्रकान्ता का मत है- "ममता कालिया का उपन्यास एक पत्नी के नोट्स दाम्पत्य सम्बन्धों का पुनर्परीक्षण करता हुआ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाता है कि क्या पति-पत्नी का सम्बन्ध मात्र सैक्स पर ही आधारित है? देह का आकर्षण समाप्त होते ही क्या विवाह से प्रेम गायब हो जाएगा? पुरुष की सौंदर्य लिप्सा को संतुष्ट करने के लिए स्त्री शरीर की सजावट करने, पति को रिझाने-दुलारने में ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति और मेधा का

हवन करती रहेगी? ताकि उसका पति हर सुंदर स्त्री के पीछे भागना छोड़ दे। क्या आपसी समझ और आत्मीयता दाम्पत्य का आधार नहीं हो सकते।"[110]

ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में यह दर्शाने का प्रयास किया है कि पति-पत्नी के बीच खालीपन होने के बाद भी वे बड़ी आसानी से बाहरी दुनियाँ को सुखी होने का नाटक दिखाते रहते हैं।

1.1.11 प्रभा खेतान (1942)

हिंदी साहित्य में महिला लेखन की पूरी परम्परा में प्रभा खेतान के उपन्यासों की अत्यधिक महत्ता रही है। उन्होंने नारीवाद, भूमंडलीकरण, आधुनिकता तथा उत्तर-आधुनिकता तक की चर्चा अपने उपन्यासों में की है।

यदि आधुनिकता बोध के सन्दर्भ में उनके उपन्यासों की चर्चा की जाए तो 'पीली आँधी' और 'छिन्नमस्ता' इसके अच्छे उदाहरण हैं। 'छिन्नमस्ता' में जड़बद्ध समाज-व्यवस्था के विरोध में छेड़ी हुई मुहिम की शुरुआत को शब्दबद्ध किया है। इस उपन्यास की नायिका प्रिया बचपन में अन्य भाई-बहनों की अपेक्षा उपेक्षित रहती है। किशोरावस्था में सगे भाई से बलात्कार एवं कॉलेज जीवन में अध्यापक की हवस का प्रेम के नाम पर शिकार होती है। अनचाहे अमीर पति के साथ भी अनेक दिनों तक देह व संसार धर्म निभाती है। उसका मन जब अपराध बोध से ग्रसित होता है तब वह अपने मित्र से कहती है "फिलिप ! अपने पैरों पर खड़ी एक औरत को स्वीकार कर पाने में अभी हमारे समाज को समय लगेगा।"[111] इससे तंग आकर अंत में वह

---

[110] आजकल(पत्रिका):- सम्पादक योगेंद्र दत्त शर्मा, पृष्ठ 19

[111] छिन्नमस्ता:- प्रभा खेतान, पृष्ठ 208

अपने पैरों पर खड़े होने का फैसला करती है और परिवार के विरोध के बावजूद अपना व्यवसाय शुरू करती है। स्त्री जागरण की आई इस आँधी द्वारा स्त्री के आधुनिक विचारों एवं व्यवहारों की ओर प्रस्तुत उपन्यास प्रकाश डालता है। आधुनिक हिंदी उपन्यासों की परम्परा में 'छिन्नमस्ता' के योगदान को अक्षुण्ण मानना होगा।

'पीली आंधी' में नैतिक मूल्यों में आ रही गिरावट को चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में चित्रित अनैतिकता एवं आधुनिकता ने सिर्फ नई पीढ़ी को ही नहीं पुरानी पीढ़ी को भी अपने शिकंजे में कसना शुरू किया है। उच्च वर्गीय समाज की नाटकीयता तथा ऐयाशी प्रस्तुत उपन्यास में अधोरेखित हुई है, जिस पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव नज़र आता है। परम्परागत मूल्यों एवं मान्यताओं को तिलांजलि देने वाला यह उपन्यास आधुनिकता की शर्तों पर खरा उतरकर आधुनिक परम्परा को अधिक पुष्ट करता है।

1.1.12 चित्रा मुद्गल (1943)

महिला लेखिकाओं में चित्रा मुद्गल का स्थान महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक जन-जीवन की समस्याओं का लेखा-जोखा इनके कथा साहित्य में हमें वास्तविक रूप में मिलता है। समकालीन जीवन के सभी सम-विषम पक्ष उनकी रचनाओं में समाविष्ट हैं। आस्था, आक्रोश, आत्मलोचन, प्रेमानुभूति में सामाजिक चिन्तन, विसंगति बोध, नगर बोध, आंचलिकता, बाल संवेदना, युवा आक्रोश, वृद्ध समस्या, नारी समस्या, मजदूरों की समस्याओं का वास्तविक चित्रण अंकित हुआ है।

उनके 'आवाँ' उपन्यास में आधुनिकता का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है और इसी कारण चित्रा मुद्गल हिंदी साहित्य में अपनी अलग पहचान लिए दिखाई देती हैं। 'आवाँ' मुंबई

की ट्रेड यूनियनों और मजदूर संघटनों के जीवन-संघर्ष को लेकर लिखा गया आधुनिक उपन्यास है। इसमें लेखिका ने औरत के दुःख, दर्द और नारी मुक्ति के सवाल को केंद्र में रखा है। प्रस्तुत उपन्यास की नमिता पांडे पुरुष वर्चस्ववादी समाज में आर्थिक स्वावलंबन की तलाश में भटकती जरूर है किंतु वह सिर्फ देह बनकर रह जाती है। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका अंत में देह से मुक्ति पाकर अपना स्वयं का अस्तित्व बनाते हुए कहती है "कभी-कभी नौकरी से भी ज्यादा सख्त ज़रूरत होती है अपने सम्मान की रक्षा।"[112] आधुनिक हिंदी उपन्यास की परम्परा में प्रस्तुत उपन्यास का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण है।

1.1.13 मैत्रेयी पुष्पा (1944)

समकालीन हिंदी महिला उपन्यासकारों में मैत्रेयी पुष्पा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे अपने उपन्यास 'इदन्नमम' के कारण बहुत चर्चित हुईं। "बुंदेलखंड की धरती तथा वहाँ के जन-जीवन को प्रामाणिक तथा मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने की कला में इनका नाम विशेष रूप से लिया जाता है।"[113] 'इदन्नम' की बऊ परम्परागत मूल्यों को निभाती है इसमें विधवा स्त्री की दयनीय स्थिति दर्शायी गई है। बऊ अपने परिवार तथा खानदान की प्रतिष्ठा के लिए अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं को दफन कर देती है। खानदान की ज़मीन-जायदाद तथा अपने बेटे के कारण अपना जीवन दाँव पर लगा देती है। पति से सम्बन्ध विच्छेद को वह यशपाल की क्रूरता, बेरहमी का कारण मानती है। उसने उसके जीवन को झुलसा के रख दिया। उस पर अत्याचार किये। उपेक्षा, मारपीट से उसका जीवन उजाड़ होने लगा। इदन्नमम की बऊ जीवन भर वैधव्य के अकेलेपन को ढोती रहती है।

---

[112] आवां:- चित्रा मुद्गल, पृष्ठ 20

[113] समय सुरभि अनन्त(पत्रिका):- संपादक नरेन्द्र सिंह, पृष्ठ 45

मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' उपन्यास स्त्री चेतना के आधुनिक स्वर को तीखी आवाज़ के साथ प्रस्तुत करता है। गाँव के स्तर पर हो रहे दमन एवं भ्रष्टाचार के विरुद्ध स्त्रियों ने मोर्चा खोला और उसमें उन्होंने सफलता हासिल की। आधुनिक परिवेश को द्योतित करने वाला प्रस्तुत यह उपन्यास आधुनिक स्त्री की विचारधारा को पुष्ट करता है। सारंग और नैनी उपन्यास के प्रमुख स्त्री पात्र हैं। वे दोनों हिम्मत से गाँव के अत्याचारी गुट को चुनौती देती हैं और चुनाव जीत जाती हैं। पति के विरोध, धमकी, प्रताड़ना एवं प्रलोभन को ठुकराकर वह ऐसा कर पाती हैं। यह स्त्री चेतना की अलग विशेषता है।

'झूला नट' की शीलो का वैवाहिक जीवन पति के कारण घुटन भरा हो जाता है। पति उसकी छाया से भागता है तथा उसका तिरस्कार, अपमान, उपेक्षा करता है। इस सबसे भी शीलो हार नहीं मानती है, न ही आत्महत्या करने की ठानती है। उसके पास केवल रह जाता है, जीने का निशब्द संकल्प, श्रम की ताकत, एक अडिग धैर्य और स्त्री होने की जिजीविषा। उसे लगता है कि उसके हाथ की छठी उँगली ही उसका भाग्य बदल सकती है। उसे काट कर फेंक देती है। इस जिजीविषा के बावजूद हम देखते हैं कि शीलो अकेलेपन की समस्या से पीड़ित नज़र आती है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में कबूतरी समाज का विसंगतिपूर्ण वातावरण तथा कज्जा समाज का कबूतरी स्त्रियों पर शोषण को दर्शाया गया है। नायिका अल्मा अपने पिता की इच्छा पूरी करते करते निरंतर शोषित और पीड़ित होती गई | पिता के सपने के कारण वह अपने आपको,अपने अस्तित्व को मिटाती और बर्बाद करती चली गई। अपने अकेलेपन और असुरक्षा के कारण उसका मानसिक बल कम होता रहता है। वह जोधा को साथ लेकर पति की उपेक्षा, अपमान करके उसे घर से बाहर निकालने पर उतारू हो जाती है। कहती है "जोधा, अब इस

घर में तेरा बाप रहेगा या हम, काये से कि घर की पटरानी बनने, कदमबाई कबूतरी आ रही है।"[114] समाज में आनंदी को सब ताना मारते हैं जिसके कारण उसे शर्मिंदा होना पड़ता है। वह अपने आपको अकेला महसूस करती है। पति की मनमानियों से तंग आकर एक दिन आत्महत्या करने में असफल होती है। आनंदी का वैवाहिक जीवन पति के कारण बिखरा हुआ और असफल हो जाता है।

'बेतवा बहती रही' की गजरा का वैवाहिक जीवन डगमगाता रहता है। पति हरिंदर (बैरागी) यादव पुत्र थे। जिनका विवाह बचपन में ही गजरा के साथ हो गया था। गजरा कद से छोटी तथा साँवली लड़की थी। जिसके कारण पति उसे त्याग कर बैरागी बन जाता है। पति को उसके चाह की पत्नी नहीं मिली तो संन्यासी बन गया। और गजरा ने अपना वैवाहिक जीवन घुटन, अकेलेपन और संत्रास में बिताया। अपनी भावनाओं, इच्छाओं-आकांक्षाओं का दमन कर अपने वैवाहिक जीवन का भार मूक बनकर ढोया।

1.1.14 नासिरा शर्मा (1948)

समकालीन उपन्यासकारों में महिला लेखिका के रूप में नासिरा शर्मा की उपस्थिति विशेष महत्त्व की है। उनके अभी तक प्रकाशित उपन्यासों में 'सात नदियाँ एक समंदर', 'शाल्मती', ' ठीकरे की मँगनी', 'जिंदामुहावरे', तुम डाल-डाल हम पात-पात', 'करवट', 'कुइयाँजान' आदि प्रमुख हैं।

---

[114] अल्मा कबूतरी:- मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ 88

सभी उपन्यास जीवन और समाज के जीवंत दस्तावेज हैं। आज के समाज में बढ़ती हुई विषमताएँ एवं विसंगतियों को दृष्टिगत रखते हुए उपन्यासकार ने उन तथ्यों का मनोवैज्ञानिक धरातल पर विवेचन-विश्लेषण किया है जो मानव जीवन से सीधा सम्बन्ध रखते हैं।

'शाल्मती' दाम्पत्य जीवन में अनबन को लेकर लिखा गया उपन्यास है। इसमें नारी का एक अलग और नया ही रूप उभरा है। शाल्मती इसमें पराम्परागत नायिका नहीं है, बल्कि वह अपनी मौजूदगी से यह अहसास जगाती है कि परिस्थितियों के साथ व्यक्ति का सरोकार चाहे जितना गहरा हो पर उसे तोड़ दिए जाने के प्रति मौन स्वीकार नहीं होना चाहिए। 'शाल्मती' दया और करुणा में डूबी अश्रु बहाने वाली उस नारी का प्रतीक भी नहीं है, जिसे पुरुष-सत्ता की गुलामी में सबकुछ खो देना पड़ता है। वह सामान्य महिला होते हुए भी आत्मनिर्भर और विश्वासी स्वभाव वाली है। हर चुनौती का सामना करने को तैयार रहती है।

'ठीकरे की मँगनी' में नासिरा शर्मा ने आजादी के बाद की उस संघर्षशील लड़की का चित्रण किया है जो अपनी मेहनत से साबित करती है कि पितृसत्ता में स्त्री की एक अपनी पहचान भी होती है।स्वातंत्र्योत्तर काल में समाज में जमींदार पद्धति का उन्मूलन हुआ और उसके स्थान पर पूँजीपति व्यवस्था पनप गई। शोषक का सिर्फ नाम बदला है। पूँजीपति, महाजन या साहूकार के शोषण से त्रस्त गाँवों में रहने वाला मजदूर, किसान व आम आदमी थोड़ी सी ज़मीन को भी अपने अधिकार में रखने में असमर्थ है। लेखिका ने उपन्यास में इसी शोषण की समस्या को उठाया है। महरुख जिस ग्रामीण इलाके में अध्यापन कराती है वहाँ पर कृषकों, निम्न वर्गों व मजदूरों का शोषण होता हुआ दिखलाया गया है। महरुख गणपत काका और उसके परिवार को शोषण से मुक्त होने का मार्ग दिखलाती है, तब जो संवाद होता है वह शोषण के स्वरूप को उजागर करने के लिए काफी है।

1.1.15 अलका सरावगी (1960)

आधुनिक हिंदी उपन्यासों की नवीनतम् धारा को आधुनिकता बोध का उपन्यास कहा जा सकता है, और अलका सरावगी इस श्रृंखला को सशक्त करती नज़र आती हैं। उनका उपन्यास 'कलि-कथा: वाया बाइपास' आधुनिक उपन्यासों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह उपन्यास जिस दौर में लिखा गया, वह दौर भूमंडलीकरण की आहट के शोर में डूबा हुआ था। यह उपन्यास भी भूमंडलीकृत समाज में सामाजिक व्यवस्था से अजनबीपन की हद तक कटे हुए किशोर बाबू की कहानी है, जिनके दिल की बाइपास सर्जरी हो जाने पर उनका चीज़ों को देखने का नजरिया ही बदल गया। जो किशोर बाबू मध्यमवर्गीय मानसिकता के अनुरूप अनेक प्रकरणों को बाइपास कर जाने की मानसिकता रखते थे, दिल की सर्जरी के बाद बार-बार उन गलियों में चले जाते हैं, जिनसे वे कभी गुजरकर आये थे, जिसमें प्रसंगानुसार इतिहास की घटनाएं भी चहलकदमी करती हुई दिखाई देती हैं। इसके साथ ही अगर हम देखें तो इस उपन्यास में परम्परागत चलते मारवाड़ी समाज के अंधविश्वास, रूढ़िग्रस्त वातावरण के कारण स्त्रियाँ परम्परा की जकड़बंदी में छटपटा रही हैं। परिवार के अधीन रहकर पराधीनता को महसूस करती हैं। सांस्कृतिक परिवेश में विधवा स्त्री को मनचाहे कपड़े पहनने का भी हक नहीं है। लेखिका ने मारवाड़ी स्त्री के शोषण की समस्या के कई चित्र इस उपन्यास में उभारे हैं। किशोर की बड़ी भाभी सोलह वर्ष की अवस्था में ही विधवा हो जाती है। घर के तीज-त्यौहार, फंक्शनों पर भी उसे मनचाहा कपड़े पहनने की इजाज़त नहीं है। अगर वो पहन भी लेती है तो परिवार वाले उसकी उपेक्षा करते हैं। "तुम्हारा दिमाग क्या अब एकदम ही खराब हो गया है भाभी? उम्र बढ़ने के साथ-साथ आदमी की अक्ल बढ़ती है, पर मुझे लगता है यू.पी. वालों की

अक्ल कम होने लगती है। यह क्या इतने चटक-मटक रंग की साड़ी पहनी है। क्या कहेंगे लोग देखकर? कुछ तो मर्यादा रखी होती समाज में।" [115]

आधुनिक हिंदी उपन्यास की परम्परा में प्रस्तुत उपन्यास मील का पत्थर सिद्ध हुआ है।

1.2 आधुनिकता बोध वाले उपन्यासकारों में उषा प्रियंवदा का स्थान

द्वितीय विश्व युद्ध की पीड़ा और संत्रास तथा आज़ादी के समय बंटवारे ने साहित्य, समाज और राजनीति के सभी पहलुओं पर प्रभाव डाला। एकाकीपन और अजनबियत का नया स्वरूप खुलकर सामने आया। रचनाकारों ने प्रेम और यौन संबंधों की बदलती मान्यताएँ, संतान व दाम्पत्य संबंधों में आई दरार पर आधुनिक स्वर देने का कार्य किया। तत्कालीन रचनाकारों पर नारी आंदोलन के प्रभाव ने उनकी सोच में भी परिवर्तन ला दिया। भोगा हुआ यथार्थ यदि साहित्य का अंश बन गया था, तो ये तत्व पुरुष व महिला दोनों रचनाकारों में दिखाई देता है। अर्थात वे काल की विशेषताओं से परे नहीं थे। नरेश मेहता, निर्मल वर्मा आदि ने नई पीढ़ी की आशा, आकांक्षाओं और अपेक्षाओं पर खुलकर कलम चलाई। जब नारीवादी आंदोलन प्रचलित नहीं था तब भी सूक्ष्म रूप से राजेन्द्र बाला घोष, सुमित्राकुमारी सिन्हा, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा तथा महादेवी वर्मा ने स्त्री की यातना का चित्रण किया है। 1960 के दशक में कथा-साहित्य में स्त्री चेतना ने अपनी उपस्थिति पूरी गहराई और शिद्दत के साथ दर्ज करवाई है।

---

[115] कलिकथा: वाया बाइपास:- अलका सरावगी, पृष्ठ 61

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य की प्रमुख लेखिकाओं के बीच उषा प्रियंवदा की अपनी एक विशेष पहचान है। सीधे- सच्चे कथानक को शिल्प से अत्यधिक बोझिल किये बिना अभिव्यक्त करने का उनका तरीका अनोखा रहा है। उनके कथ्य और शिल्प की सादगी पाठक के मन को छू लेनेवाली है। उनकी अधिकांश रचनाएँ पारिवारिक रिश्तों की घुटन-टूटन पर आधारित है। उनकी कई कहानियाँ भोगा हुआ यथार्थ लगती हैं। 'वापसी' कहानी के गजाधर बाबू हों या 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास की नायिका सुषमा हो, ये अपने आस-पास के ही पात्र लगते हैं, जिन्हें हम अपने रोज़मर्रा के जीवन में देखते, सुनते, और समझते हैं। उनके साहित्य की नारी पात्रों में एक वैयक्तिक चेतना दिखाई देती है। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, प्रभा खेतान की तरह उषा प्रियवंदा ने भी अपने पात्रों के घुटन, संत्रास और अन्तर्द्वन्द्व को सूक्ष्म रूप से चित्रित किया है। परन्तु इनके साहित्य में इसे विशेष तौर पर महसूस किया जा सकता है। हम देखते हैं कि नैतिक सम्बन्धों के बदलाव और उसमें पड़नेवाली दरार को मन्नू जी ने अपनी विशिष्ट दृष्टि प्रदान की है। महिला होने के बावजूद स्त्री-पुरुष संबंधों के चित्रण में मन्नू जी ने जिस प्रामाणिकता और तटस्थता का परिचय दिया है उसी प्रकार का प्रयास उषा जी की ओर से भी हुआ है।

उनकी रचनाओं में एक ओर आधुनिकता का प्रबल स्वर मिलता है तो दूसरी ओर उनमें चित्रित प्रसंगों तथा संवेदनाओं के साथ हरेक वर्ग का पाठक तादात्म्य का अनुभव करता है। उषा जी ने अपने कथा-साहित्य में गहरे यर्थाथबोध का परिचय दिया है।

आज के नारी जीवन के विषय में अपनी सृजन की मनोभूमि तैयार करते हुए उनकी कथा-कृतियों से लगता है कि बँटकर जीवन जीना आज की नारी की नियति बन गई है। कुछ कर दिखाने की चाह उसे संघर्ष के महासागर में ले जाती है। आधुनिक नारी न अपने भारतीय

संस्कारों को छोड़ सकती है न पूर्ण रूप से उन्हें अपनाकर सुख का अनुभव कर पाती है। लेखिका के साहित्य में आधुनिक नारी की छटपटाहट, संघर्ष, तड़प एवं संत्रास की स्थिति को अनुभूति के स्तर पर पहचाना और व्यक्त किया गया है। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य परिवेश को अपने कथा साहित्य में निरूपित किया है और वे उसमें सफल भी रहीं हैं। 'भया कबीर उदास' यह दर्शाता है कि नारी मन की कचोट और शारीरिक बीमारी मन को भी बीमार कर देती है। यमन का कैंसर किस प्रकार उसके तन के साथ उसके मन को भी कुरेदता है इसका वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में मार्मिकता के साथ किया गया है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा, 'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका, 'शेषयात्रा' की अनुका, 'अंतर्वंशी' की वाना से सभी पात्रों का पाठकों के साथ जुड़ाव उनकी रचनाओं की सफलता को ही दर्शाता है। उषा जी ने अपनी कलम से सिर्फ विचार प्रवाह को अभिव्यक्त ही नहीं किया है अपितु सफलतापूर्वक एक नए आयाम को प्रस्थापित भी किया है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य के विकास में उषा प्रियंवदा के योगदान को हम उनके कहानी संग्रहों के माध्यम से भी भली-भांति समझ सकते हैं। उषा जी उन लेखिकाओं में से हैं जिनमें ज़िन्दगी को समझने-परखने का साहस है। वह नई कहानी को एक विशेष रूप देने में सफल रही हैं। अतः उनके कहानी साहित्य पर एक सरसरी नज़र उनके योगदान का परिचय देती है। उषा जी की रचनाओं को नई कहानी आंदोलन से भी जोड़ा गया है। जिसमें आधुनिकता का बोध उजगार होता है। जिसमें आज रोमांटिक बोध को भी आँका जाने लगा है। इनकी अधिकांश रचनाओं में उस भारतीय नारी को आधार बनाया गया है, जो अपने परिवेश से हटकर, कटकर अकेली हो गई है और अपने सूनेपन को भरने के लिए प्रेम सम्बन्ध में खो जाती है। उषा जी ने उसकी मानसिक परतों को सूक्ष्मता से उधेडा है। "सुश्री उषा प्रियंवदा ने जो कथा चित्र प्रस्तुत किये हैं उनमें व्यक्ति की कुंठा, पीड़ाओं, अतृप्त अकांक्षाओं आदि को ही दृष्टि

में रखा गया है। नारी होने पर भी सुखी और स्वस्थ दाम्पत्य जीवन, गृहस्थी के चित्र उनकी लेखनी में अंकित नहीं हुए है, यह आश्चर्य की बात है। इसका कारण यह है कि वर्तमान युग में वैयक्तिक भावनाओं को सर्वोपरि महत्त्व देने की जो लहर-सी चल पड़ी है, वे इसमें बह गई है।"[116]

उषा प्रियंवदा की कहानियों में भारतीय एवं पाश्चात्य परिवेश का चित्रण विद्यमान है। 'कितना बड़ा झूठ', 'मछलियाँ', 'चाँदनी में बर्फ पर' आदि कहानियों में समन्वयवादी परिवेश का चित्रण हुआ है। यहाँ पाश्चात्य परिवेश का चित्रण तो हुआ है परन्तु पात्र का मन भारतीय संस्कारों से अधिक जुड़ा हुआ है। भारतीयता उसके रोम-रोम में बसी है। प्रियंवदा जी ने नारी जीवन की विसंगतियों को सोचा और समझा है। पारंपरिक रास्ता, ऊब, असफलता तथा सूनेपन की पीड़ाओं से मुक्त होने की प्रक्रिया उनकी रचनाओं में परिलक्षित है। उनके चरित्र में एक ओर संस्कार बद्ध जड़ता है तो दूसरी ओर नव्यत्तम सक्रियता एवं सजगता है। उनके विषय में यह कथन दृष्टव्य है "उषा प्रियंवदा ने देशी और विदेशी परिवेशों में स्त्री-पुरुषों के संबंधों को व्यक्त किया है। इनके प्रस्तुतीकरण में शिष्टता, भावाभिव्यक्ति में वैचारिक गरिमा, भावुकता में वैदिक अनुशासन और सर्वत्र शिक्षित संतुलित दृष्टि दिखाई पड़ती है। 'वर्जित सत्यों' का उद्घाटन उन्होंने साहस लेकिन सहजता के साथ 'चाँदनी में बर्फ पर', 'पिघलती हुई बर्फ', 'मछलियाँ', 'सागर पार का संगीत' में किया है।"[117]

---

[116] साठोत्तरी हिंदी कहानी और महिला लेखिकाएं:- डॉ. विजया वारद, पृष्ठ 155

[117] वर्तमान हिंदी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन:- डॉ. साधना अग्रवा ल, पृष्ठ 215

डॉ. गोवर्धन शेखावत ने उनके कथा साहित्य के विषय में अपना मंतव्य देते हुए लिखा है- "उषा प्रियंवदा ने मध्यम वर्ग के पारिवारिक यथार्थ एवं उसकी समस्याओं को सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। सामाजिक विषमता, पति-पत्नी के सम्बन्ध और प्रेम के विविध पक्षों का उद्घाटन उनकी कहानियों में हुआ है। उनकी कहानियों में संघर्षशीलता एवं टूटते परिवारों की मार्मिक कथा है।"[118]

उषा प्रियंवदा ने अपने दम पर प्रभावशाली लेखन से अपनी विशेष जगह बना ली है। इस कलम दिवानी साहित्यकार ने कथा-साहित्य को ऐसी चुन-चुन कर अनमोल रचनाएँ दी हैं कि जिससे हिंदी कथा-साहित्य नए आयामों के साथ और समृद्ध बना है।

निष्कर्षतः आधुनिक हिंदी साहित्य समसामयिक भारतीय समाज की उपज है। इनमें समकालीन महिला लेखन आधुनिक नारी बोध का प्रतिबिंब है। आज की लेखिका नारी की स्थिति को लेकर विह्वल है। परम्परा और आधुनिकता, संस्कार एवं शिक्षा तथा कथनी और करनी के अंतर ने नारी के जीवन में जितना वैषम्य उत्पन्न किया है उसे जागरूक लेखिका पचा नहीं पायी हैं। आधुनिक हिंदी उपन्यास के मूल में यह पीड़ा ही कार्यरत है तथा इस पीड़ा से मुक्ति पा लेने की उत्कंठा एवम् आत्मान्वेषण की अदम्य चाह भी।

अगर बात उषा प्रियंवदा की करें तो हिंदी कथा साहित्य के क्षेत्र में उषा प्रियंवदा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में विविध परिस्थितियों, परिवेश एवं पात्रों के माध्यम से नारी का 'वस्तु' से 'व्यक्ति' रूप में 'ट्रांसफर्मेशन' चित्रित किया गया है।

---

[118] नई कहानी: उपलब्धि और सीमाएं:- डॉ. गोवर्धन शेखावत, पृष्ठ 310

इनके उपन्यासों में उच्च वर्गीय जीवन की भावहीनता, भौतिकता के अतिरेक के कारण टूटते पारिवारिक संबंधों को भी चित्रित किया गया है।

इस प्रकार आधुनिक रचनाकारों ने जिस भोगे हुए एवं अनुभूत यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति की है, वह यथार्थ बहुआयामी है। इनके लेखन से एक सर्वमान्य सत्य यह उभरा है कि इन्होंने चाँद तारों की काल्पनिक दुनिया देखने के बजाय अपने आपको देखा-परखा और प्रकट किया है। और महिला लेखिकाओं की बात करें तो एक नारी होने के नाते महिला लेखिकाओं ने स्त्री-जीवन के अन्तर्बाह्य जीवनानुभवों को प्रस्तुत किया है। नारी मन का सूक्ष्म अध्ययन भी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों की विषय-वस्तु बना है। आधुनिक कथाकारों की रचना विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों का चित्रण करने के बावजूद अर्थ और काम पर विशेष रूप से केंद्रित रहा है। आर्थिक स्वनिर्भरता की चाह जहाँ पुरुष के स्वामित्व को चुनौती देती प्रकट हुई है वहीं यौन क्रिया को स्त्री पुरुष दोनों के लिए एक समान मानदंड पर स्थिर करने का संकल्प व्यक्त हुआ है। आज के हिंदी महिला लेखन का प्रमुख स्वर आक्रोश का है, विरोध का है। यह आक्रोश और विद्रोह का भाव पुरुष की पुरानी मानसिकता के प्रति है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासकारों ने मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं एवं संकुलताओं को अपने विस्तृत कलेवर में समेट लिया है। परम्परा का निषेध करने वाले, वर्तमान के साथ सक्रिय संग्राम करने वाले तथा भविष्य के प्रति शंकाकुल मानसिकता रखने वाले मध्यवर्गीय व्यक्ति मन के रेशे-रेशे उतार रखने में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास सफल रहे हैं। मानवीय अस्तित्व की तलाश करना या मानव जीवन के यथार्थ को तलाशना आधुनिक रचनाकार का लक्ष्य है। आधुनिक हिंदी साहित्य के संदर्भ में यही सत्य है। नरेश मेहता, शशि प्रभा शास्त्री, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी आदि

अनेक साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने मानव जीवन के यथार्थ को विभिन्न कोण से तलाशने का कार्य किया है। और जहाँ तक उषा प्रियंवदा के योगदान की बात है इन्होंने 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' से लेकर 'अल्पविराम' तक जो सफर तय किया है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। उषा जी का लेखन उन सच्चाइयों का पर्दाफाश करता प्रस्तुत होता है जिन्हें समाज छुपाकर रखना चाहता है। इनके आधुनिक नारी पात्र स्त्री अस्मिता की ऊँचाइयों को छूने के प्रयास में जिन मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था का भाव व्यक्त करते हैं, वह न केवल अन्यत्र दुर्लभ है, वरन् आज की महती ज़रूरत भी है। भारतीय एवं पाश्चात्य परिवेश और परिस्थितियों से जन्मे ये पात्र क्रमिक विकास के अनेक सोपानों को पार कर आत्मान्वेषण करते हुए मुकम्मिल व्यक्तित्व को पा सके हैं।

चतुर्थ अध्याय:

'शेषयात्रा' उपन्यास में आधुनिकता बोध

आधुनिक काल के प्रथम सोपान से ही मध्यकालीन बोध के टूटने की अनुगूँज सुनाई देने लगी थी। परिणामतः साहित्य में पद्य-बद्धता से इतर गद्य का आविर्भाव हुआ और कई अन्य विधाओं ने जन्म लिया। आधुनिक बोध की झलक यहीं से दिखना शुरू हो जाती है। साथ ही पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, तर्क की महत्ता तथा औद्योगिक क्रांति के आने से हर क्षेत्र में परिवर्तन हुआ और समेकित प्रभाव यह हुआ कि मध्यकालीन बोध ध्वस्त हुआ तथा आधुनिक बोध स्थापित हुआ।

आधुनिक बोध को एक मूल्य के रूप में समझा जाना चाहिए न कि सिर्फ रहन-सहन, खान-पान व वेशभूषा से। आधुनिकता सिर्फ प्राचीनता का त्याग भर नहीं है बल्कि पुराने मूल्यों के साथ चलकर वर्तमान से संगत बिठाना भी है, जहाँ से नई सोच, नई तर्कशक्ति व नई दृष्टि पैदा होती है। आधुनिक बोध के उदय होने से धर्म का एकाधिकार घट गया और विज्ञान केंद्र में आ गया।

बीसवीं सदी के आरंभ से साहित्य में यह भाव-बोध और अधिक विकसित हुआ। जिस समय उषा प्रियंवदा का लेखन शुरू हुआ तब तक यह एक सोपान और चढ़ गया था। यथार्थ का स्वरूप परिवर्तित हुआ, विदेश में रहने के कारण लेखन में बदलाव आदि आया। द्वितीय विश्व युद्ध की भीषण त्रासदी व आज़ादी के विघटन के बाद मोहभंग की स्थिति पैदा हुई, संयुक्त परिवार टूटे, स्त्री-पुरुष संबंध बदले ओर भोगा हुआ यथार्थ सामने आया। सबसे महत्वपूर्ण यह

रहा कि रचनाकार यौनिकता को लेकर खुलकर लिखने लगे। सेक्स, संसक्ति, उदासीनता, एकाकीपन, दृढ़ मानसिकता आदि सामने आए।

महिला उपन्यासकारों, यथा उषा प्रियंवदा के साहित्य में आधुनिकता और उसका बोध साफ दिखाई देता है। व्यक्ति के सूक्ष्म मन को टटोलना, उसे खोजना, व्यथा-चित्रण, अजनबीपन आदि की अभिव्यक्ति उषा जी के साहित्य में साफ देखी जा सकती है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं "आपके (उषा प्रियंवदा) उपन्यासों में नई कविता दौर की आधुनिकता के सारे तत्व- अकेलापन, संत्रास, ऊब, घुटन, अजनबीपन विद्यमान हैं।"[119]

उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'शेष यात्रा' में आधुनिकता बोध के प्रतिफलन को हम निम्न शीर्षकों के अंतर्गत विवेचित करेंगे। इससे पहले उपन्यास के पात्रो का एक संक्षिप्त परिचय आवश्यक हो जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास में ‘अनु’ नामक नायिका और ‘प्रणव’ नायक है, जहाँ उच्च- मध्यवर्गीय प्रवासी भारतीय समाज अपने तमाम अंतर्विरोधों और कुंठाओं के साथ मौजूद है।

अनु एक विवेक संपन्न, सहृदय और संवेदनशील नारी है। वह जो चाहती है कर नहीं सकती और जो नहीं चाहती, वही करती चली जाती है- यही उसके जीवन की विडंबना है। इस उपन्यास में ‘अनु’ स्त्री मन की तमाम कोमलता के बावजूद जागते स्वाभिमान और कठोर जीवन-संघर्ष की प्रतीक है। उपन्यास की केंद्र बिंदु अनु भारतीय है लेकिन अपने जीवन के उतार चढ़ाव में वह अमेरिका जा पहुँचती है। यहीं से उसकी जीवन यात्रा प्रारंभ हो जाती है।

---

[119] हिंदी उपन्यास- रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ 178

अब अगर उपन्यास के नायक की बात करें तो प्रणव अमेरिका में एक डॉक्टर है, जो विवाह के उद्देश्य से भारत आया है। उसे एक ऐसी जीवन संगिनी की तलाश है, जिसे वह अपनी इच्छानुसार नचा सके, यही वजह है कि वह अनु से विवाह करने का फैसला क्षणों में कर लेता है। प्रणव बचपन से ही काफ़ी ज़िद्दी और स्वार्थी किस्म का व्यक्ति रहा है। उसने केवल वही कार्य किये जिनके द्वारा वह आत्मसंतुष्टि पा सके। वह घूमने- फिरने वाला एक ऐसा पक्षी है जो दोबारा अपने घोंसले में वापिस नहीं आता। एक बार किसी माहौल को पीछे छोड़ आने पर पुन: उसी में प्रवेश करना उसे बहुत उबाऊ और खाली लगता है। स्वतंत्रता, सन्नाटा, खालीपन और अकेलापन प्रणव को बहुत सुखद लगता है।

उपन्यास की एक अन्य पात्र चंद्रिका राणा, जो कि एक फिल्म डायरेक्टर है, और प्रणव के साथ मिलकर एक डॉक्यूमेंट्री पर काम कर रही है। साथ ही वह न्यूयॉर्क में एक टी.वी. स्टेशन में प्रोग्रामों की प्रोड्यूसर है। वह एक सशक्त और आत्मनिर्भर महिला है। अंततः हम पाते हैं कि प्रणव अनु को त्याग कर चंद्रिका के साथ चला जाता है।

अनु के अकेले रह जाने पर उसे जीवन में आगे बढ़ने का प्रोत्साहन दिव्या से मिलता है। दिव्या और अनु कॉलेज की मित्र हैं। दिव्या कॉलेज में एक बड़े घराने की, सांवली, गंभीर लड़की थी। एम.ए. करते-करते उसकी शादी जयंत से हो गई और वो दोनों साथ-साथ पढ़ने व अपना भविष्य संवारने विदेश चले गए। अब दिव्या एक सांवली, दुबली और गठे बदन की युवती थी, जिसमें अब आत्म विश्वास आ गया था। उसके चेहरे व आचरण का खुलापन, सहज मुस्कान, और बिना इधर-उधर किये बात कहने का सीधापन अनु को चौंका देता था।

दीपांकर दिव्या का भाई है - सहज, सामान्य, कोमल। वह बचपन से ही अनु से प्रेम करता आया है और वर्तमान में वह आँखों का सर्जन है। प्रणव द्वारा त्याग दिए जाने पर अनु आत्मनिर्भर बनती है और अंततः दीपांकर से विवाह कर लेती है।
उपन्यास के ये सभी पात्र किस तरह आधुनिकता बोध को खुद में समेटे हुए हैं तथा वह किस सीमा तक आधुनिकता बोध से प्रभावित हैं, आगे के शीर्षकों के अन्तर्गत हम यही समझने का प्रयास करेंगे।

1.1 अकेलापन और अजनबीपन

बदलते जीवन मूल्यों की वजह से व्यक्ति में अकेलापन और अजनबीपन की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। परिवार और परिवेश में व्यक्ति इसको झेलता है। यह स्थिति औद्योगीकरण, यांत्रिकता, बढ़ती हुई जनसंख्या, बेकारी और आर्थिक संकट के कारण उत्पन्न होती है।

उन्नीसवीं शती में विज्ञान व प्रौद्योगिकी क्षेत्र की प्रगति के कारण पुराने मूल्यों और आदर्शों में परिवर्तन हुआ। तत्कालीन परिवेश में व्यक्ति के सारे मूल्यों का नियंत्रक धन है। लोगों के बीच की आर्थिक विषमता व्यक्ति को अपने आपसे और दूसरों से काटती है। ऐसी स्थिति में वह अकेला और अजनबी बन जाता है। औद्योगिक क्रांति के बाद उत्पन्न मशीनों और कम्पनियों की वजह से व्यक्ति को एक निश्चित वेतन मिलने लगता है। उस सन्दर्भ में श्रमिकों को दूसरों पर आश्रित रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। तब व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का सम्बन्ध खत्म हो जाता है। इस युग में मानव की सारी क्रियाओं का निर्धारण मशीनी समाज है। मानव इस यान्त्रिकता के अनुरूप चलने को विवश है। ऐसा करने पर उसका अस्तित्व नष्ट हो जाता है। अस्तित्वविहीन मानव का अजनबी हो जाना स्वाभाविक ही है। इस खालीपन से बचने का प्रयत्न करने पर भी वह बच नहीं सकता, इसलिए रॉबर्ट मैक्लवर कहते हैं- "अजनबी व्यक्ति ज़्यादा संवेदनशील प्रकृति वाले और प्रतिभाशाली होते हैं। वे चाहते हैं कि उनके जीवन का

कुछ अर्थ हो, कुछ लक्ष्य हो तथा अपने जीने के पीछे किसी अच्छे उद्देश्य की प्रतीति हो। लेकिन प्रायः इस प्रकार की सोद्देश्यता रखने वालों के साथ किसी न किसी प्रकार की गड़बड़ हो जाती है। ऐसे व्यक्ति जीवन में ऊँचा लक्ष्य तो रखते हैं, अपने विभ्रमों में और वृद्धि कर लेते हैं। उनका असंतुष्ट, आहत, प्यासा अहं पीछे ढकेल दिया जाता है और उनके आगे विराट खालीपन धीरे-धीरे पसरने लगता है। अजनबी व्यक्ति इससे भागना चाहता है और इस भागने में वह स्वयं से भागने लगता है।"[120]

नियमों को बनाने वाला व्यक्ति है। इसलिए अपने जीवन की समस्याओं के लिए व्यक्ति ही उत्तरदायी है और उसका फल उसे अकेले ही भोगना पड़ता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय परिवेश में देश-विभाजन, साम्प्रदायिकता, औद्योगीकरण और शिक्षा प्रसार के परिणाम स्वरूप बदलाव आया। इस स्थिति में स्वराज्य की कल्पना की पूर्ति नहीं हुई। हमारी पुरानी मान्यताओं के स्थान पर नयी मान्यताओं की स्थापना हुई जिन पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट है। इन नयी मान्यताओं को अपनाने के साथ-साथ मानव जीवन की जटिलताएँ भी बढ़ती रहती हैं। ज़िन्दगी से ऊब कर मानव ने विसंगत, तनाव और अजनबीपन का शिकार बनने में अधिक समय नहीं लिया। साहित्यकारों ने इस बदलते परिवेश को अंकित करने की ओर ध्यान दिया। इसलिए इनकी रचनाओं में महानगरीय जीवन की विसंगति और अजनबीपन का बोध मिलता हैं।

स्वतंत्रता से जुड़े सपनों की टूटन समाज के मध्यवर्ग को मोहभंग की स्थिति तक पहुँचाती है। इसलिए इस समय के कथा- साहित्य में मध्यवर्ग की घुटन और पीड़ा की अकुलाहट दिखाई देती है। मध्यवर्गीय जनता की इस अजनबी स्थिति को स्वीकार करके राजेंद्र यादव

[120] मैन एलोन- एलिएनेशन इन मॉर्डन सोसायटी- रॉबर्ट मैक्लवर, पृष्ठ 146

कहते हैं- "बड़े-बड़े राष्ट्रीय या वैयक्तिक उद्योगों की छाया में करोड़ों लोगों का ऐसा वर्ग है जो कहीं भी अपने को जुड़ा हुआ नहीं पाता। कोई शहर उनका अपना नहीं है, कोई सम्बन्ध उनका अपना नहीं है, उनकी जड़े कहीं पीछे खेत-खलिहानों में हैं, न किसी संयुक्त परिवार में।"[121]

स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न औद्योगीकरण, संयुक्त परिवार के विघटन ने व्यक्ति के मन में अलगाव और अजनबीपन की अनुभूति को गहराया है। कथा साहित्य में अंकित संबंधों का बदलता स्वर इसका परिणाम है। शिक्षित नारी के अजनबीपन को भी इन कथाकारों ने व्यक्त किया है। परिवार से कटा व्यक्ति प्रेम की तलाश करता है और प्रेम संबंधों में पड़ जाता है। यह प्रेम वह कभी अपने प्रेमी से पाना चाहता है, कभी वैवाहिक साथी से। लेकिन वहाँ भी उसे निराशा से अकेलेपन का एहसास होता है। इस अजनबीपन से मुक्ति पाने के लिए डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी मनुष्य को आधुनिक होने का उपदेश देते हैं। जीवन की उत्तरोत्तर बढ़ती गतिशीलता और जटिलता को ठीक से पहचानने और तद्नुकूल अपनी संचरण पद्धति निर्धारित करने की सलाह देते हुए डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी आधुनिकता के क्षेत्र को विस्तृत करने की बात करते हैं क्योंकि "आधुनिकता वह दृष्टि और जीवन पद्धति है जो पूर्व और पश्चिम के बढ़ते हुए अन्तराल को कम करके सामंजस्य के लिए आवश्यक भाव-भूमि प्रदान कर सकती है।"[122]

आधुनिक युग में अन्य कथाकारों की तरह उषा प्रियंवदा ने भी मानवीय जीवन के अकेलेपन और अजनबीपन को अभिव्यक्त किया है। इनके उपन्यासों में हम पाते हैं कि शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने पर आधुनिक नारी स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए लड़ती है

---

121 प्रेमचन्द की विरासत और अन्य निबंध- राजेंद्र यादव, पृष्ठ 12

122 समकालीन भारतीय साहित्य में पूर्व और पश्चिम के मूल्यों के बीच अवरोध की स्थिति - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी- क, ख, ग पृष्ठ 30

और इस लड़ाई में कभी कभी उसे अकेलेपन का एहसास होता है। कारण यह है कि समाज ने जो व्यवस्था बनाई है वह इन प्रगतिशील नारियों के लिए हमेशा स्वीकार्य नहीं।

'शेषयात्रा' उपन्यास को जब हम उपर्युक्त शीर्षक- अकेलापन और अजनबीपन के अंतर्गत देखते हैं तो पाते हैं कि इस उपन्यास में वर्णित 'अनुका' का अकेलापन समाज द्वारा दिया गया अकेलापन है। माँ-बाप के देहान्त के बाद मामा-मामी के पालन-पोषण में वह बड़ी होती है। इसलिए वह बचपन से अकेलेपन की कड़वाहट से परिचित थी। प्रणव से शादी तय करते वक़्त भी उसका यह अकेलापन द्रष्टव्य है। "सारे तूफान, हलचल के बीच अनु चुप है। उससे कुछ पूछा नहीं जाता, उसे कोई कुछ नहीं बताता।"[123]

अनु को सब एकदम अयथार्थ, एक सपना-सा लगने लगता है। एयरपोर्ट की भीड़-भाड़, चमकीली बत्तियाँ, प्रणव के हाथों से सरकते नोट- अनु चकित होती है कि "यह क्या सच हो सकता है? उसका सर घूमता है, वह खम्भे को कसकर पकड़ लेती है। वह एक प्रकार के अपरिचय की शिकार होती है। जहाज़ में बैठने के बाद भी अनु को रह-रहकर कँपकपी-सी आती रहती है।"[124]

प्रणव के अस्पताल जाने के बाद अनुका बँधी-बँधाई दिनचर्या करके समय बिताती है। कभी-कभी अस्पताल से फोन आता है कि डॉ. कुमार एमर्जेन्सी में व्यस्त हैं, लौटने में देर हो जाएगी। तब अनु अकेली रह जाती है। "उसे पहली बार लगा कि उसके लिए प्रणव एकदम

---

123 शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 15

124 वही, पृष्ठ 16

अपरिचित है, वह उसके बारे में कुछ छिटपुट बातें छोड़कर कुछ नहीं जानती। यह पुरुष उसे कहाँ ले जा रहा था। अनु के पेट में बड़ा-सा बगूचा उठा और हलक में अटक गया, वह फिर रो पड़ी।"[125]

शादी से पहले उसके जीवन के निर्णय उसके घर वाले लेते थे और शादी के बाद प्रणव। अनुका ऐसे में अकेली पड़ जाती है। विभा के साथ भी समय बिताने पर उसे ऐसा लगता है कि वह उस परिवेश का भाग नहीं है। वहाँ पर अनुका के सामने "शराब की बोतलें खुलने लगीं। अनु कुर्सी पर चुपचाप बैठी रही और सब कुछ ऐसे देखती रही कि वह इस दृश्य का केंद्र नहीं, मात्र दर्शक हो।"[126]

उपन्यास को आगे पढ़ते हुए पता चलता है कि अनुका की ज़िन्दगी का निर्धारण किस हद तक दूसरों के हाथ में है। यह इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि- "ज़िन्दगी की यह पटकथा अनु को बचपन से ही मिली थी। वह किसी चीज़ के लिए जिम्मेदार नहीं है, उसकी सारी ज़िन्दगी दूसरों ने निर्धारित की थी, साल में एक बार जब सारे घर के कपड़े सिलते थे, अनु के कपड़े भी बन जाते थे। पसंद-नापसंद का सवाल ही नहीं उठता था।"[127]

प्रणव के बहुत देर-देर तक घर न लौटने पर अनुका अकेलापन महसूस करती है और इस अजनबी शहर में अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए माँ बनने की इच्छा ज़ाहिर करती है पर प्रणव यह कहकर उसकी इस इच्छा को टाल देता है कि अभी हमें ज़िन्दगी एन्जॉय करनी

---

[125] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 17

[126] वही, पृष्ठ 18

[127] वही, पृष्ठ 25

चाहिए, उसके बाद बच्चों के बारे में सोचना चाहिए। बच्चे के बदले प्रणव अनु को कार खरीद कर दे देता है। वह इस निर्जीव वस्तु से अनु के अकेलेपन को दूर करने का प्रयत्न करता है। प्रणव अनुका को यह सुझाव भी देता है कि उसे पार्टियों में शामिल हो कर अपने अजनबीपन से मुक्त होना चाहिए, पर वहाँ भी प्रायः उसे अकेले ही जाना पड़ता है। प्रणव उसके साथ नहीं जाता। प्रणव अनुका से पूछता है- "तुम कहीं चली क्यों नहीं जातीं? अपनी किसी सहेली के घर?"[128]

अन्य स्त्रियों से सम्बन्ध रखने की व्यग्रता में वह अपनी पत्नी को अजनबीपन के गर्त में धकेल देता है। अकेले घर में रहते हुए उसे डर-सा लगने लगता है। और इससे बचने के लिए वह गाड़ी लेकर दुकानों के चक्कर लगाती रहती है, ड्राई क्लीनिंग करवाती है, पेट्रोल भरवाती है, खाने-पीने का सामान खरीदती है, खाना बनाती है और प्रणव की प्रतीक्षा में रात तक बैठी रहती है। "अनु सारी शाम बैठी-बैठी टेलीविजन देखती है। घर में एकाएक डर-सा लगने लगता है। विभिन्न आवाजें। सड़कों पर मोटरें, अंदर ईंधन की भट्टी का चलना और रुक जाना, रेफ्रिजरेटर की आवाज़। टेलीविजन पर रंग-बिरंगी तस्वीरें, एक फेंटेसी दुनिया।"[129]

अस्पताल से अनिश्चित अवधि की छुट्टी लेकर प्रणव फिल्म निर्माण के लिए केलिफोर्निया जाना चाहता है। अकेली अनुका उससे सुबकती हुई कहती है- "मुझे भी साथ ले चलो, प्लीज़। मैं अकेली कैसे रहूँगी? मैं तो डर के मारे मर जाऊँगी।"[130]

---

[128] वही, पृष्ठ 29

[129] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 44

[130] वही, पृष्ठ 49

अनुका के अकेलेपन की तीव्रता यहाँ मुखर हो उठती है। प्रणव के जाने के बाद वह सोचती है कि अगर घर में एक-दो बच्चे होते तो कुछ चहल-पहल रहती। लेकिन उसे यह प्रणव से कहने की हिम्मत नहीं है। केलिफोर्निया जाने के बाद प्रणव "शनिवार और इतवार को सारा-सारा दिन वहीं बीतता है। अनु एकदम अकेली हो जाती है। प्रणव को अब पार्टियों के लिए भी शामें नहीं बचती। अनु की सारी नई साड़ियाँ सूटकेस में पड़ी पड़ी सड़ रही हैं।"[131] घर से दूर रहने पर भी प्रणव अनु को फोन करता है। अनु बार-बार उससे कहती है "कब लौटेंगे? मुझे बहुत अकेला लगता है, मन नहीं लगता। सुनिए, बस अब आ जाईए।"[132] प्रणव की असलियत का पता चलने पर अनु अधिक क्रुद्ध हो जाती है। क्योंकि उस अपरिचित देश में उसका प्रणव के बिना कोई बंधु नहीं। बेहोश होने पर अस्पताल में उसे भर्ती कराया गया। होश में आने पर अनु अकेले में बिलखती है- "गॉड, ओ गॉड, हेल्प मी। मेरी मदद करो, मुझे शक्ति दो, ओ सत्ती मैया, ओ साईं बाबा, मनसा देवी, तुम्हें चीर बाँधूँगी, विंध्यवासिनी देवी, तुम्हें चुनरी उढ़ाऊँगी, गंगा मैया मैं भरे जाड़ों तारों की छाँह नहाऊँगी, मेरे प्रणव को मुझे लौटा दो, हनुमान जी, ज़िन्दगी भर मंगल का व्रत करूँगी, लक्ष्मी नारायण, मैं सोने का छत्र चढ़ाऊँगी, तिरुपति के स्वामी तुम्हें...।"[133]

यहाँ भी अनुका के अकेलेपन का दर्द छिपा हुआ है। कभी-कभी अनुका को लगता है कि वह मर गई है, तभी तो शरीर के होने का कोई एहसास नहीं होता। अजनबी बनने पर वह

---

[131] वही, पृष्ठ 47

[132] वही, पृष्ठ 51

[133] वही, पृष्ठ 56

अपने से पूछती है कि क्या वह पागल हो गई है? इससे बचने के लिए वह प्रणव का पैर पकड़कर उसे साथ रख लेने की याचना करती है। लेकिन प्रणव मानता नहीं। एक नई ज़िन्दगी की शुरुआत करने की प्रेरणा अनुका को दिव्या से मिलती है। दिव्या अनुका से अस्मिता की तलाश करने का उपदेश देती है- "तुम कब तक अपने सारे अस्तित्व को प्रणव नाम की खूँटी पर टाँगे रहोगी। तू क्यों अपने को मिट्टी में मिला रही है। अगर उस शख्स ने तेरी कद्र नहीं की तो रोने बिलखने की बजाय उसे ज़िन्दगी से जाने दे।"[134] तलाक के कागज मिलने पर अनु अपनी सहेलियों से सहायता माँगती है। लेकिन सभी उसे अकेली छोड़ देते हैं। जब अनुका अपने परिश्रम से इस अजनबीपन से मुक्ति पाती है तब प्रणव सबसे सम्बन्ध विच्छेद करके अपने को अजनबी समझने लगता है। दिल का मरीज़ बनकर अस्पताल में रहते वक़्त वह अनु से कहता है- "जब मैं कहता हूँ कि मैं अकेला हूँ तो उसका मतलब है एकदम अकेला, बिना घर-बार, बिना बीवी-बच्चों के एकदम अकेला और संतुष्ट।"[135] प्रणव से मिलने पर अनुका अपने अकेले जीवन की कड़वाहट स्पष्ट करके कहती है- "एक अकेली औरत, वह भी अगर जवान हो और बदसूरत नहीं, उसे क्या-क्या झेलना पड़ता है, किस-किस तरह से अपना बचाव करना पड़ता है, यह सब मुझे बहुत मुश्किल तरीके से ही सीखना पड़ा। अब देखिये, मैंने सुंदरता का अभिशाप मिटा दिया है।"[136] दूसरी ओर अजनबीपन का दार्शनिक पक्ष अनावृत करके प्रणव अनुका को समझता है- "अल्टीमेटली तो हमें अकेले ही सब झेलना पड़ता है। बेहोशी का इंजेक्शन मिलने और चेतना खोने के बीच जो दो-तीन सेकेंड होते हैं- ज़िन्दगी और मौत के बीच का वह रास्ता

---

[134] वही, पृष्ठ 71-72

[135] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 108

[136] वही, पृष्ठ 110

अकेले ही पार करना पड़ता है और जानती हो अनु एक बार वह झेल लेने पर किसी चीज़ से डर नहीं लगता। मौत से भी नहीं..."[137]

जिस अकेलेपन और अजनबीपन की बात यहाँ हमने की उसका एहसास हमें उपन्यास के प्रथम पृष्ठ से ही हो जाता है। यह कथन इस बात को स्पष्ट करता है- "दिन के उजाले में जो चीज़ें इतना त्रास नहीं देतीं, वही रात के अकेले, घुप अँधेरे में कितनी बड़ी, कितनी दुर्गम लगने लगती हैं। अकेलेपन के उस डर का भी जैसे एक रूखा-सूखा, तालू से चिपका स्वाद है, वह स्वाद अनु को एक मिनट भी नहीं छोड़ता।"[138]

"अपनी प्रतिस्पर्धा, भौतिकवाद और निरर्थकता बोध से सत्रस्त इस संसार में व्यक्ति आज अपने को नितान्त अकेला पाता है और दूसरों से सहज ढंग से रागात्मकता पूर्ण सम्बन्धों को विकसित भी नहीं कर पाना उसके लिए एक अजीब सी मजबूरी हो जाती है। यहीं से उसकी अनुभूति में 'अजनबीपन' के भाव गहराते जाते हैं।"[139]

अकेलापन एवं अजनबीपन पश्चिम की देन न हो कर हमारे यहाँ की परिस्थितियों से उपजा हुआ है। अकेलेपन के सम्बन्ध में डॉ. इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं- "अकेलापन का बोध बहुत पुराना है। मध्यकालीन है। शायद इससे भी पहले का है। उपनिषदों में भी आँका जा सकता है। आधुनिकता का अकेलापन मध्ययुगीन या रोमांटिक अकेलापन से भिन्न कोटि का है।

---

[137] वही, पृष्ठ 112

[138] वही, पृष्ठ 07

[139] उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में आधुनिकता बोध- संदीप विश्वनाथराव रणभिरकर, पृष्ठ 124

मध्ययुग में यह आत्मिक स्तर पर है। रोमांटिक युग में वैयक्तिक स्तर पर और आधुनिक युग में स्थिति-नियति के स्तर पर।"[140]

उषा प्रियंवदा की रचनाओं में यह अकेलापन और अजनबीपन की स्थिति मुख्यत: उनके प्रवासी जीवन की देन है, जहाँ व्यक्ति परिवेश से टूटकर समाज व फिर अंत में खुद से भी टूटा हुआ महसूस करता है। असुरक्षा, मूल्यहीनता व अतीत प्रेम ने उनके अंदर अजनबीपन, अकेलापन, घुटन, ऊब, जैसे भावों को काफी गहराई से पिरो दिया है। डॉ. विद्याशंकर राय ने भी लिखा है- " अजनबीपन की भावना की अत्यंत स्पष्ट और मुखर स्वीकृति उनकी कहानियों और उपन्यासों में देखी जा सकती हैं। भारतीय समाज में अजनबीपन की स्थिति को वे साहस के साथ स्वीकार भी करती हैं।"[141]

1.2 ऊब

वर्तमान युग में व्यक्ति संबंधों में निहित विसंगतियों के कारण मानसिक समस्याओं से जूझ रहा है। जीवनेच्छा से पूर्ण स्त्री या पुरुष को जब प्रतिकूल वातावरण मिलता है तो उनकी समस्त आकांक्षाएँ मिट्टी में मिल जाती हैं। मानसिक विरोध की स्थिति में वह सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता। वर्तमान युग में दाम्पत्य रिश्तों में मनभेद व मतभेद के चलते मानसिक रूप से उथल-पुथल मची हुई है। जिसके परिणामस्वरुप दम्पत्ति परस्पर घुटन, कुंठा, तनाव, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, घृणा, असंतोष, अवसाद, हीनत्व जैसी मनोग्रंथियों के शिकंजे में जकड़े हुए हैं। ये मानसिक ग्रन्थियाँ दाम्पत्य रिश्तों के लिए आज चिंता का विषय बनी हुई है। इन्हीं मनोविकृतियों के पनपने से वैवाहिक जीवन चिंता व शोक का अड्डा बना हुआ है। हमारे समाज

---

[140] आधुनिकता और हिंदी साहित्य- इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 74

[141] हिंदी उपन्यास और अजनबीपन- डॉ. विद्याशंकर राय, पृष्ठ 36

में सामाजिक कुप्रथाएँ, स्वभावगत भिन्नता, अतृप्त कामवासना अनेक ऐसे मनोवैज्ञानिक पहलू हैं जो व्यक्ति में अनेक मनोविकारों व मनोग्रंथियों को जन्म देते हैं। इसी कारण स्त्री-पुरुष संबंधों में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

आधुनिक काल ने मानव जीवन की सरलता और सहजता को एक सीमा तक सोख लिया है और उसके स्थान पर उसमें अकेलापन और ऊब भर दी है। इस परिवर्तन ने जीवन को कहीं गहरे से प्रभावित किया है। अकेलापन और एकतरफा प्रीत की यातना, ये दोनों ही बड़े जटिल संवेग हैं, जो औद्योगिक पूंजीवादी व्यवस्था में निराशावाद और विफलतावाद को फैलाते हैं। आधुनिक व्यक्ति कहीं भी स्थाई संतोष नहीं पाता है। नित्य परिवर्तन में उसका मन रमता है। दूसरे व्यक्तियों से उसका आंतरिक लगाव कम होता जाता है। वह अपने दर्द को अकेले भोगता है और इस भोगने की प्रक्रिया में वह अकेला ही होता चला जाता है और ऊब का अनुभव करने लगता है। 'शेषयात्रा' उपन्यास पढ़ते हुए भी हम पाते हैं कि प्रणव भी अपनी ज़िन्दगी और अपने काम से ही नहीं अपने संबंधों से भी जल्दी ऊब जाता है। वह न केवल अपना काम बदल लेना चाहता है बल्कि अनु और अपने सम्बन्ध भी तोड़ देना चाहता है किसी नए सम्बन्ध के लिए, क्योंकि वह धीरे-धीरे अनु से भी ऊब का अनुभव करता है। और अनु यह सब स्वीकार नहीं कर पाती और प्रणव द्वारा उसे अकेला छोड़ दिए जाने पर अपनी ज़िन्दगी से ऊब कर उसे समाप्त कर देना चाहती है। उसे हर चीज़ से अब बस ऊब का एहसास होता है- "खिड़कियों से पर्दों के बावजूद उजाला झर रहा है। उस रोशनी में अनु की नज़र कॉंच की मेज पर जमी धूल की गर्द पर टिक जाती है। क्या वह उठे, रसोई जाए, दराज खोले, झाड़न निकाले,

आकर धूल पोंछे, जा...ने....दो... दरवाज़े और मेज़ की तरफ पीठ करके वह दूसरी ओर मुँह फेर लेती है।"[142]

वह अब प्रणव के चले जाने पर अपनी ज़िन्दगी से पूरी तरह ऊब गई है और अपनी ज़िन्दगी में चाह कर भी वापस नहीं लौट पा रही।

वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी के परस्पर खट्टे-मीठे अनुभव जीवन-पर्यन्त चलते रहते हैं। कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जो उनके मनोभावों को गहराई तक प्रभावित करती हैं और फिर ऊब जैसी मनोवृतियों का उदय होना भी एक प्रकृति है। बिना प्रयास के मिला सुख अधिक काल तक आकर्षक नहीं लगता और फिर मन की चंचलता जो कि हर क्षण बदलती है, नए की कामना करती है। ऐसी स्थिति में तटस्थता बनाये रखना मुश्किल ही है।

पहले-पहल अनु भी इतनी सुख-सुविधाओं से अत्यंत प्रसन्न होती है, परन्तु जैसे-जैसे प्रणव उसे हर वक़्त अकेला घर पर छोड़कर अन्य कामों में व्यस्त रहने लगता है तो अनु उस ऐशो-आराम, साड़ियाँ, घर, किचन आदि से ऊब जाती है। उसे यह वैभव एकदम उबाई पन का एहसास करवाता है- "बिजली की घड़ी निर्मम भाव से लाल रंग में सेकेंड, मिनट, घंटे दिखाती रहती है। उसी के अनुसार समझ लेना पड़ता है कि अब दोपहर होगी, अब शाम हो गई, अब रात के ग्यारह बज चुके हैं, नींद आने की आशा न होते हुए भी बिस्तर पर लेट जाना चाहिए।"[143]

---

142 शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 08-09

143 वही, पृष्ठ 10

विदेशों में आदमी जल्दी ही ऊब जाता है। वहाँ का परिवेश ही ऐसा है कि व्यक्ति जीने से ही नहीं, बल्कि अपनी पत्नी से भी ऊब जाता है। प्रणव लड़कियों और औरतों से बहुत जल्दी ही ऊब जाता है। वह कितनी ही नर्सें, डॉ. विभा, न्यूयार्क की डायवोर्सी आदि से ऊबकर ही वह हिन्दुस्तान में आया था और उसने हाउसवाइफ के रूप में अनु को पसंद किया था। अनु जैसी जीवनसाथी को पाकर भी वह थोड़े ही वर्षों में ऊब जाता है और उसे छोड़ देता है। वह अनु से एक स्थान पर कहता भी है कि- "मैं बहुत इनडिपेंडेंट और अनरिलायबल हूँ, कहीं टिककर नहीं रहता, ऊबता हूँ तो चल देता हूँ।"[144]

इस प्रकार अनु को छोड़ देने के बाद प्रणव को डॉक्टरी पेशा बिल्कुल ऊबाऊ लगने लगता है। उसका मन कुछ और करने को छटपटाता रहता है। वह अपनी अच्छी खासी डॉक्टरी, नाम, पैसा, घर, पत्नी सबको छोड़ कर फ़िल्मी दुनिया के चक्कर में फँस जाता है और अपनी ज़िन्दगी को तबाह कर लेता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज के आधुनिक जीवन में व्यक्ति बहुत ही आसानी से अपनी रोज़-मर्रा की ज़िन्दगी से ऊबता चला जाता है और हमेशा ऊब से छुटाकारा पाने के लिए पुरानी ज़िन्दगी छोड़कर कुछ नया शुरू करना चाहता है और बस कुछ ही समय में उस नए से भी ऊब जाता है। यह ऊब आज के महानगरीय जीवन का परिचायक होता जा रहा है।

1.3 घुटन और संत्रास

आज जैसे जैसे हम विकास की ओर बढ़ रहे हैं, विज्ञान प्रगति कर रहा है, वैसे-वैसे हमारी मनोवृत्तियाँ भी प्रभावित हो रही हैं। आज बेशक हमारे आस-पास लोगों का सैलाब

---

[144] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 100

मौजूद हो पर उस सैलाब में भी हम अकेले हैं और घुटते रहते हैं। "इस युग में प्रेम, स्नेह, आस्था का स्थान घृणा तथा अनास्था ने, विश्वास का स्थान अविश्वास ने, सद्भाव का स्थान दुर्भाव ने और श्रद्धा का स्थान अश्रद्धा ने ले लिया है। परिणामत: व्यक्ति अपनों से तथा अपने परिवेश से कटकर भीतर ही भीतर घुट रहा है।"[145] इन सभी बातों से आज व्यक्ति घुटन और संत्रास का अनुभव कर रहा है।

डॉ. हुकुमचन्द राजपाल के अनुसार "वस्तुत: यह बोध(ज्ञान), अवस्था या स्थिति है जिसमें पीड़ा, निराशा, भय, कुंठा, असंतोष, पराजय, संशय एवम् आतंक इत्यादि का समावेश रहता है।"[146]

मशीनीकरण और यान्त्रिकता के इस युग में जब मनुष्य स्वयं से, संसार से उदासीन हो जाता है तो वह घुटन और संत्रास से घिरता चला जाता है। 'शेषयात्रा' उपन्यास में हम देखते हैं कि पति प्रणव द्वारा अनु को तलाक दिए जाने पर वह अकेलेपन की घुटन को झेलती हुई दीपांकर से विवाह का निर्णय लेती है। वहीं प्रणव जब अस्वस्थ होकर अनु के पास आता है तो वह भी पश्चाताप की अग्नि और अकेलेपन के घुटन और टीस को याद करता है। रिश्तों को तोड़ना तो बड़ा सरल होता है, पर जीवन साथी के बिना जो अपूर्णता और रिक्तता को व्यक्ति झेलता है तब उसे अपनी गलती का पश्चाताप होता है, पर तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।

---

[145] उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में आधुनिकता बोध- संदीप विश्वनाथराव रणभिरकर, पृष्ठ 197

[146] विविध बोध: नए हस्ताक्षर- हुकुमचन्द राजपाल, पृष्ठ 46

अब अगर बात करें घुटन की तो घुटन एक मनः स्थिति है जो व्यक्ति के लिए हानिकारक रहती है। कई बार जब व्यक्ति शारीरिक व मानसिक अक्षमताओं को इच्छापूर्ति में बाधक पाता है और एकाकीपन की त्रासदी का भुक्तभोगी होता है तब वहाँ घुटन और संत्रास की स्थिति का होना स्वभाविक है। पत्नी सदैव पति प्रेम की आकांक्षी होती है। उसकी साँसों में पति प्रेम की लालसा फूलों की तरह रची-बसी होती है। यही प्रेम, सानिध्य और अधिकार ही शायद एक स्त्री या एक पत्नी की लालसा है, जिसके वशीभूत हो वह अपने सारे दुःख और कष्टों को दरकिनार कर भावना और त्याग की बहती नदी बन जाती है। हमारे जीवन में दाम्पत्य-प्रेम एक ऐसी तपस्या की सामग्री है जिसमें प्रेम, आत्मीयता, समर्पण एवं पवित्रता जैसे मूल मन्त्रों का मिश्रण अति आवश्यक है। यदि वैवाहिक जीवन में दोनों में से किसी एक के भी मन में विरक्ति या असंतोष की मनोवृति पनपने लगे तो इसका अंत काफी दुःखद हो सकता है।

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में नारी जीवन की घुटन, संत्रास आदि का बोध पाया जाता है। इनके उपन्यासों की विशेषता यह है कि इनमें अस्तित्ववाद से प्रभावित सभी स्थलों और स्थितयों का चित्रांकन भारतीय परिवेश की सापेक्षता में ही ग्रहण किया गया है। प्रेम एवं वैवाहिक जीवन की असफलता, मध्यवर्गीय आर्थिक स्थिति, पति का स्वच्छंद यौन-जीवन, अनमेल विवाह, पति की अकर्मण्यता, इच्छाओं-आकांक्षाओं का दमन आदि बातें नारी पात्रों में दिखाई देने वाले संत्रास, निराशा, घुटन आदि के मूल में है।

वस्तुत: उषा प्रियंवदा का कथा साहित्य नारी जीवन की त्रासद स्थितियों का एक ऐसा बयान है, जिसे शायद ही किसी सबूत की जरूरत हो। उनके नारी चरित्र स्वयं एक सबूत बनकर हमारे सामने आ खड़े होते हैं। लेखिका ने ऐसे हर चरित्र के भावनाशील मनोजगत् और आत्मद्वंद्व को बारीकी से पढ़ने-परखने का कार्य किया है और चाहा है कि वह साहस और संघर्ष

से अपनी दारुण नियति को बदलने में कामयाब हो। 'शेषयात्रा' की अनु लेखिका की इसी रचनात्मक सोच की निर्मिति है। अनु अपने पति पर इतना निर्भर हो जाती है कि वर्षों तक स्वयं कुछ भी नहीं कर पाती और न करना चाहती है। गुड़िया की तरह सज-धज कर पार्टियों में शामिल होना और पार्टियाँ देना ही उसका प्रमुख कार्य बन जाता है। पति की निजी व्यस्तताएँ और अन्य स्त्रियों के साथ सम्बन्ध उसके जीवन को निराशा एवं घुटन से भर देते हैं। पति के प्रति पूर्णतः समर्पित अनु को पति की ओर से प्रतिदान के रूप में मिलता है केवल दुःख। संत्रास झेलती अनु कहती है- "वह मेरा अपना दुःख है, मेरा अपना प्राइवेट दुःख। मेरी बिल्कुल निजी हार। चूर-चूर होकर बिखर जाने की हार। बड़ा कहते थे कि तुम्हें रानी बनाकर रखूँगा- एक सिसकी उसे ऊपर से नीचे तक हिला जाती है।"[147]

चन्द्रिका के चक्कर में प्रणव अनु को तलाक़ देता है। परिणामत: "अनु अंदर-अंदर गल रही है, तिल-तिल मर रही है, एक असाध्य बीमारी के रोगी की तरह।"[148]आँसुओं की बाढ़ में बहती अनु को उसका जीवन निरर्थक लगने लगता है- "उसका यह रोना अलग तरह का रोना है। एक बहुत-बहुत गहरे स्तर पर एक मूक विलाप, जो अजपा जाप की तरह निरंतर चलता रहता है। पलकें भारी हैं, आँखें कडुआई जैसे रेत का एक पूरा बवंडर उनमें समा गया है।"[149]

वह अपने घर के माहौल में घुटन का अनुभव करने लगती है। हर कार्य को करते हुए भी उसकी यह घुटन कम नहीं होती। "रोज़ की तरह चाय बनाकर पी, बाहर से अखबार लाकर

---

[147] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 56

[148] वही, पृष्ठ 60

[149] वही, पृष्ठ 65

प्रणव की मेज़ पर रख दिया। झाड़न उठाकर हर सतह पर फेरा, पर बार-बार उसने अपने को अनमना हो जाते पाया। फिर भी उसने सायास सारे काम निपटाए।"[150]

प्रणव अपने काम में व्यस्त रहता है और अनु अकेले रह-रह कर ऊबने लगती है वह पूरी कोशिश करती है इस स्थिति से निकालने की, पर यह गहराता जाता है। घर में सब-कुछ मौजूद होने पर भी अनु प्रणव की अनुपस्थिति की पीड़ा हर दिन महसूस करती है। "एक बार फिर उसे सब खाली लग उठा। वह खड़ी थी, तैयार अच्छी-सी साड़ी पहनें, पर्स में नया-नया ड्राइविंग लाइसेंस था। वह बाहर निकलकर आई, पर उसे साहस न हुआ कि वह कहीं निकले। सारा शहर उसके सामने बिखरा हुआ था- बाज़ार, दुकानें, सड़कें, सिनेमाघर, पार्क और वह थी कि घर के आगे खड़ी थी।"[151]

यानी सारी सुविधाएँ, सारे ऐश-ओ-आराम होने पर भी उसे अकेलेपन का अनुभव होता है। और आगे उपन्यास को पढ़ते हुए जब प्रणव का व्यवहार धीरे-धीरे अनु के प्रति रूखा होता जाता है, तब वह समझ नहीं पाती इस व्यवहार की वजह। वह अंदर ही अंदर, यह सब कैसे ठीक हो, सोचकर घुटती रहती है- "अनु को लगता है कि कहीं कुछ अलक्ष्य घटा है। ज़िन्दगी की जो गाड़ी आराम से पटरी पर चली जा रही थी, जैसे लड़खड़ाने लगी है। कारण था प्रणव,

[150] वही, पृष्ठ 28

[151] वही, पृष्ठ 29

उसकी लंबी-लंबी चुप्पियाँ, उसका अनमनापन, उसका बात बेबात पर गरम हो जाना, अनु को झिड़क देना।"[152]

प्रणव द्वारा अनु को त्याग दिए जाने और चन्द्रिका के साथ चले जाने के बाद तो अनु का यह एकाकीपन और घुटन असहनीय हो जाता है। वह घर की निर्जीव चीजों पर अपना गुस्सा निकालती है। अचानक अनु एकदम अकेली, एकदम टूटा हुआ महसूस करती है। "कैसी प्रवंचना है। एक बार फिर भाग्य ने उसके साथ खिलवाड़ किया है। आँसुओं की बाढ़, अपना पूर्ण समर्पण कितना बेबस, कितना निरर्थक हो गया है। अनु के पास सिर्फ यादें बची हैं। उन्हीं को उकेर-उकेरकर अपने को दंश देती रहेगी।"[153]

1.4 पागलपन

आधुनिक सभ्यता में व्यक्ति पागल-सा होता जा रहा है। भौतिक सुख में आज अधिकता देखने को मिलती है और उस सुख के अचानक छिन जाने से व्यक्ति पागल हो जाता है, जैसा कि हम इस उपन्यास में पाते हैं। अनु को प्रणव ने इतना सुख दिया कि उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी और फिर अचानक प्रणव द्वारा उसे छोड़ कर चले जाने पर अनु खुद को संतुलित नहीं रख पाती और मानसिक रूप से पूरी तरह टूट जाती है। अनु इस बात से भी अनभिज्ञ थी कि प्रणव एक चरित्रहीन पुरुष था। इसलिए तो वह सुंदर अनु को पाकर भी उससे ऊब जाता है। प्रणव अनु से कहता है कि वह उसे छोड़ देगा, तो इस बात से अनु घबरा जाती है, पर जब ज्योत्सना से प्रणव के चरित्र का कच्चा चिट्ठा उसे मालूम होता है तो उसका दिल टूट जाता है।

---

[152] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 42

[153] वही, पृष्ठ 61

वह पागल सी हो जाती है। उसे महसूस होता है कि "तो ऐसे टूटता है दिल। अनु जैसे सचमुच अपने दिल का टूटना सुन सकती है। उसके दिल को जैसे कोई पंजे में पकड़कर ऐंठ रहा है। वह मुट्ठियों से अपने बाल कसकर पकड़ लेती है। फिर चींखउठती है। उसके अंदर हजारों ज्वालामुखी फूट पड़ते हैं।"[154]

इस घटना से अनु का मन-मस्तिष्क इतनी बुरी तरह प्रभावित होता है कि वह बिल्कुल होश में नहीं रहती। व्यक्ति के जीवन से एकाएक उसकी सबसे प्रिय चीज़ का छिन जाना उसे आपे से बाहर कर ही देता है और यहाँ तो किसी दूसरी स्त्री के लिए अनु का त्याग किया गया था। वह उस पूरे-के-पूरे शहर में खुद को अकेला पाती है। अपने आस-पास की हर चीज़ तबाह कर देना चाहती है, बिल्कुल वैसे ही जैसे उसका जीवन हो गया है "सबसे पहले चाय का प्याला फेंका, जाकर खिड़की से टकराता है और खनखनाकर टूटता है। वह मेज़ से पूरी ट्रे उठाकर पूरे ज़ोर से नीचे पटक देती है, फिर मेज़ काँच सहित टेबल लैंप, टेप रिकॉर्डर, प्रणव के यत्न से इकट्टे किये रेकॉर्ड, उन्हें पैरों से रौंदते हुए उसे वहशियाना सुख मिलता है। प्रणव की शराब की बोतलें, महँगी बोतलें रसोई में जहाँ-तहाँ गिरती हैं। जिस चीज़ पर हाथ जाता है, उसी को बिना सोचे, तोड़- फोड़, फेंक-फाँक, तहस-नहस करती जा रही है। एक बवंडर की तरह। आज कुछ नहीं बचेगा।"[155]

अनु के पड़ोसी उसे अस्पताल में ले जाते हैं। अस्पताल में उसे लगता है कि वह जैसे मर गई है। वह बहुत अनिच्छा और चिड़चिड़ेपन से आँखें खोलने की कोशिश करती है। डॉक्टर

---

154 वही, पृष्ठ 55

155 शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 55

उसकी मदद करना चाहते थे। परन्तु वह जानती थी कि ऐसी मदद कोई नहीं कर सकता। डॉक्टर के कहने पर कि "तुम अभी कितनी छोटी हो! तुम्हें मालूम है, तुम्हारी ज़िन्दगी खत्म नहीं हुई, तुम किसी दूसरे के साथ..., तो अनु ठठाकर हँस पड़ी और डॉक्टर उसे ताज्जुब से देखता रह गया। डॉक्टर नहीं जानता था उसका यथार्थ, बड़ी लल्ली की पुत्रवधू होने का यथार्थ, भरी हुई ननिहाल में एक आश्रित के रूप में पलकर बड़ी होने का यथार्थ।"[156]

अनु इस स्थिति में पहुँच गई है कि उसे अपने जीवन से अब कोई लगाव नहीं रहा। उसे अब अपनी सुंदरता भी मुँह चिढ़ाती हुई लगती है, क्योंकि इसी सुंदरता की वजह से प्रणव ने उसे प्रेम किया और एक दिन ऊब जाने के बाद उसे अकेला छोड़ कर चला गया। डॉक्टर द्वारा यह समझाने पर कि अभी उसकी उम्र बहुत कम है और वह बहुत सुंदर भी है, अनु चाहे तो अपना जीवन पुनः शुरू कर सकती है "अनु बाल खोलकर मुँह पर छितरा लेती है, 'लो, अब किसी को नहीं दिखेगा मेरा चेहरा,मेरी सुंदरता।"[157]

अनु इस बात से भी परेशान है कि अगर उसे घर जाना पड़ा और सबका सामना करना पड़ा तो वह कैसे सबको बता पाएगी कि प्रणव अब उसके साथ नहीं बल्कि चन्द्रिका के साथ चला गया है। यह पागलपन उसे घेरता चला जाता है, वह अपनी ज़िन्दगी को खुद शायद अब कभी न सँभाल पाए, बैठे बैठे बस यही सोचती रहती है, और जब प्रणव उससे मिलने अस्पताल आता है तो उसे लगता है जो सब कुछ प्रणव ने उसके साथ किया वह सब कुछ पुनः घटित हो

---

[156] वही, पृष्ठ 60

[157] वही, पृष्ठ 60

रहा है। प्रणव द्वारा उसे समझाने पर वह विद्रूप होकर कहती है "मैं तो जन्म की ही पागल हूँ। पाँच साल मेरे साथ रहकर आपको पता नहीं चला।"[158]

अनु प्रणव से यही कहती रहती है कि मुझे अपने साथ ले चलो, पर प्रणव द्वारा मना करने पर और बार-बार उसे समझाने की कोशिश करने पर अनु फिर से अपना आपा खो देती है- "अनु पलंग से उठ बैठी और फुफकारती हुई प्रणव पर जा गिरी। उसकी बँधी मुट्ठियाँ प्रणव के चेहरे, कंधों और सीने पर गोली की तरह टकराकर बरसने लगीं।"[159]

इतना सब कुछ करने पर भी वह शांत नहीं हो पाती और प्रणव को सामने बैठा देखकर बहुत बुरा भला कहती है। "अनु ने उसकी बाँह में दाँत गड़ा दिए। प्रणव का एक सख्त चाँटा उसके गाल पर पड़ा। अब वह झिंझोड़कर वापस पलंग पर फेंक दी गई। प्रणव की कमीज़ का कपड़ा अभी उसके दाँत में था।"[160]

अस्पताल में अनु अन्य पागलों को देखकर सोचती है कि, "कितना चैन है। कितना अच्छा है पागल हो जाना। कोई जिम्मेदारी नहीं, कुछ भी करो-चीखो, चिल्लाओ, रोओ, गाओ कोई जिम्मेदारी नहीं। कपड़े फाड़कर फेंक दो, आसपास की सारी दुनिया तहस-नहस कर दो, कोई मार-पिटाई नहीं, कोई सज़ा नहीं, अकेले कमरे में बंद होने के सिवा। बदन पर नील नहीं, चेहरे पर चोटों के दाग नहीं। बस पागल।"[161]

---

[158] वही, पृष्ठ 62

[159] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 63

[160] वही, पृष्ठ 64

[161] वही, पृष्ठ 64

डॉक्टरों का कहना था कि अनु आकस्मिक सदमें से थोड़ा झटका खा गई है। परंतु अनु चाहती है कि वह पागल हो जाए, कारण कि उसके दिमाग में प्रणव की बेवफाईयों के साँप हर वक़्त डसते न रहें।

1.5 प्रवासी जीवन में संघर्ष और मोहभंग की स्थिति

औद्योगीकरण के इस दौर में बढ़ती समस्याएँ, जटिलताएँ, नगरीकरण के बढ़ते दायरों के साथ ही साथ एक व्यापक मानववादी भावना का फैलना प्रारम्भ हो गया है। आज विकास के इस दौर में जब विज्ञान इतनी प्रगति कर रहा है कि अपने देश में एक राज्य से दूसरे राज्य तक पहुँचना तो आसान हो ही गया है, साथ ही साथ यातायात की सुगमता में यूरोप क्या अमेरिका और एशिया तक सिमटकर एक दूसरे की सीमाओं-समास्याओं से प्रभावित हो रहा है। अतः वैश्वीकरण के इस दौर में युवा पीढ़ी का विदेश की सुविधाओं की ओर आकर्षित होना, वहाँ का जीवन-जीने की इच्छा जागृत होना, वहाँ बसकर अपने भविष्य को सँवारते हुए प्रवासी जीवन बिताना स्वाभाविक ही लगता है। परन्तु मात्र एक देश से दूसरे देश में बस जाने से समस्याएँ सुलझ नहीं जाती क्योंकि हम जानते हैं कि इस वैज्ञानिक दौर में जब व्यक्ति की बौद्धिकता और तर्क क्षमता का भी विकास हुआ है और इसी वजह से व्यक्ति आसानी से सब-कुछ स्वीकार नहीं कर लेता बल्कि उस पर प्रश्न चिन्ह लगाता है फिर चाहे वह समस्त पुराने संस्कार ही क्यों न हों। सर्वत्र एक मोहभंग और आस्थाहीनता जैसी स्थितियाँ मौजूद नज़र आने लगीं हैं। और यह स्थितियाँ केवल एक देश या स्थान की नहीं है बल्कि समस्त विश्व की हैं।

यही कारण है कि प्रवासी जीवन में मोहभंग और संघर्ष की दास्ताँ सुनने को मिलती है। कोई भी भारतीय जब विदेश का हिस्सा बन जाता है तब उसे अनेक समस्याओं से गुज़रना पड़ता है। संस्कृति, स्थान, एवं परिवेश बदल जाने पर व्यक्ति पहले पहल स्वयं को वहाँ बिल्कुल

अलग-थलग महसूस करता है परन्तु धीरे-धीरे उस परिवेश और माहौल में खुद को ढालने की कोशिश में लग जाता है।

उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों में अत्यंत बारीकी से उन तमाम भारतीय परिवारों की जीवन स्थितियों का विश्लेषण किया है जो बेहतर अवसरों की तलाश और आशा में प्रवासी जीवन जी रहे और विदेश में बसे युवकों से मध्यवर्गीय परिवारों की कन्याओं का विवाह उनका सौभाग्य समझ कर कर दिया जाता है। और उसके बाद शुरू होता है संघर्ष और मोहभंग का अटूट सिलसिला।

जब हम 'शेषयात्रा' उपन्यास को इस शीर्षक 'प्रवासी जीवन में मोहभंग और संघर्ष' के अन्तर्गत रखते हैं तो पाते हैं कि 'शेषयात्रा' की अनु जो कि एक सामान्य-से भारतीय परिवार से आती है और बी. एस सी. की विद्यार्थी रही है, इस संघर्ष और मोहभंग की स्थिति से गुज़रती है। जब उसका विवाह अमेरिका के एक डॉक्टर प्रणव के साथ हो जाता है तब उसका यह संघर्ष प्रारम्भ होता है। प्रणव भी इस बात से परिचित है कि "विदेश में कितने तनाव, कितने दबाव होते हैं, उसमें गाड़ी खींचना बड़ा मुश्किल हो जाता है।"[162]

यहाँ अनु प्रणव के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए खुद को प्रणव के जीवन से और विदेशी माहौल तथा वहाँ की पार्टियों से जोड़ने का भरसक प्रयास भी करती है। "मेज़ पर विभा ने ढेर सारा खाना सजा दिया। शराब की बोतलें खुलने लगीं। अनु कुर्सी पर चुपचाप बैठी रही और सबकुछ ऐसे देखती रही कि वह इस दृश्य का केंद्र नहीं, मात्र दर्शक हो।"[163]

---

[162] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 89

[163] वही ,पृष्ठ 18

प्रणव सब कुछ जानते-समझते हुए भी अनु की फ़िक्र न करते हुए उसे छोड़कर चन्द्रिका के साथ चला जाता है। अनु का मोहभंग होता है 'रानी बनाकर रखूँगा' बोलने वाला प्रणव उसे मझधार में अकेला छोड़कर चला जाता है और उस विदेशी ज़मीन पर अनु का जीते रहने और अकेले सब कुछ सम्भालने का संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है।

अनु इतना सब हो जाने के बावजूद वक़्त लेती है परन्तु अंततः संभल जाती है और इस दारुण स्थिति को हराकर आगे बढ़ जाती है, और एक डॉक्टर भी बन जाती है। अनु को विवाह के पहले से ही उसकी सहेली का भाई डॉ. दीपांकर प्यार करता आया है। जहाँ ऐसे सम्बन्ध भारतीय परिवेश में स्वीकृत नहीं हैं, वहीं विदेश में उन्हें मान्यता मिल जाती है और वह दीपांकर के साथ विवाह कर लेती है। परन्तु प्रणव अपनी आदतों के कारण कहीं भी टिक नहीं पाता, वापस आकर कहता है- "कितना कुछ जिया, झेला, देखा, कितनों से जुड़ा, कितने ठिकाने बनाए और कितनी बार सबकुछ एक निष्ठुरता, एक अलगाव से तोड़कर आगे बढ़ गया।"[164]

इसी तरह उपन्यास के अन्य पात्र जयंत और दिव्या नवविवाहित दाम्पत्य जीवन और सपने लेकर विदेश आते हैं परन्तु कहीं न कहीं संघर्ष करते हुए उनका भी इस प्रवास और प्रवासी जीवन से मोहभंग हो जाता है।

1.6 अस्तित्व की तलाश

आधुनिकता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू है, अस्तित्व की तलाश। उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों में विभिन्न पात्रों के माध्यम से इसी अस्तित्व की तलाश का सफल चित्रण

---

[164] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 107

किया है। उनके उपन्यासों के पात्र अपने अस्तित्व के प्रति बेहद सतर्क हैं और उसी की तलाश में इधर-उधर भटकते रहते हैं। ये पात्र अपने अस्तित्व के प्रति सदैव अतिशय सचेत रहते हैं।

आज़ादी के बाद वर्तमान शिक्षा और नव-जागरण से भारतीय नारी अधिक सशक्त और जागृत हुई है। वह अपने जीवन और अस्तित्व के बारे में गहराई से सोचने और समझने लगी है। वह हर क्षेत्र में स्वतन्त्र हो रही है और अर्थोपार्जन करके आत्मनिर्भर बन रही है। वह रिश्तों में भी बराबरी का दर्जा चाहती है फिर चाहे वह पति-पत्नी का रिश्ता हो या अन्य कोई। परिवार तथा उसकी सभ्यता की बागडोर अपने हाथों में लेकर भी वह विश्व के उन्मुक्त प्रांगण में विचरण करने की आकांक्षा रखती है।

'शेषयात्रा' की अनु का जीवन प्रणव द्वारा उससे सम्बन्ध तोड़ लेने के बाद ताश के पत्तों की तरह बिखर जाता है। तलाक से पूर्व उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था। वह कहती है- "यह बात मुझे हमेशा कचोटती थी कि मैं व्यक्ति की हैसियत से कुछ भी नहीं रही; जो कुछ थी, वह सब श्रीमती कुमार की हैसियत से।"[165] इस स्थिति में अनु पूरी तरह टूट जाती है। उसकी सहेली दिव्या आज की महिला है, वह प्रगतिशील विचारों की है। वह अन्याय के सख्त विरुद्ध है। वह भारत की सुसंस्कृति को तो अपनाए रखती है पर वहीं तक जहाँ तक बात उसके अस्तित्व पर नहीं आती पर अगर उसका पति उसके अस्तित्व को ठेस पहुँचाता है तो फिर वह उस बात का सख्त विरोध भी करती है। वह अनु से कहती भी है कि अगर जयंत मेरे साथ ऐसा करता तो "मैं कहूँगी, जाओ जयंत, इफ आएम नॉट गुड एनफ फॉर यू, यू आर नॉट गुड एनफ फॉर मी

---

[165] वही, पृष्ठ 107

और फिर मैं जयंत को दिखा दूँगी कि मैं भी कुछ हूँ, कि मैं उन पर निर्भर नहीं हूँ। मैं अपनी ज़िन्दगी से हर मायने में जयंत को निकाल फेंकूँगी।"[166]

दिव्या अनु को समझाती है और अन्याय के खिलाफ निर्णय लेने की क्षमता विकसित करने को कहती है। दिव्या कहती है- "सुनो अनु, तुम कब तक अपने सारे अस्तित्व को प्रणव नाम की खूँटी पर टाँगे रहोगी। उस शख्स ने तो तुम्हारी खबर भी नहीं ली कि कहाँ हो, कैसी हो?"[167] वह बार-बार अनु को उसके आत्मसम्मान और अस्तित्व के प्रति जागृत करने की कोशिश करती है और कई बार उसे डाँट कर भी अन्याय के खिलाफ बोलने के लिए कहती है- "तुम्हारा आत्मसम्मान कहाँ है अनु? दिव्या का रोष अब छिपता नहीं, 'तुम ज़िन्दगी-भर अपने को पायदान बनाये रखोगी कि प्रणव तुम्हें खूँदता रहे?"[168] दिव्या के इन विचारों से प्रभावित होकर अनु पति से तलाक़ लेने के पश्चात डॉक्टर बन जाती है। पुरुष के आश्रय में स्व-अस्तित्व को देखने वाली अनु अब अपने जीवन में पुरुष के होने न होने पर ही प्रश्न चिह्न लगा देती है "स्थाई रूप से पुरुष जीवन में न हो, तो न हो। ज़रूरत भी किसे है।"[169]

इस तरह जो अनु उपन्यास के प्रारम्भ में एकदम भोली-भाली अपने अधिकारों और स्व-अस्तित्व से अनजान दिखाई देती है, वही अनु उपन्यास का उत्तरार्ध आते-आते स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर और अत्मविश्वास से पूर्ण नज़र आती है और एक डॉक्टर बन जाती है। अनु के

---

166 शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 73

167 वही, पृष्ठ 71

168 वही, पृष्ठ 77

169 वही, पृष्ठ 117

संदर्भ में डॉ. शीला रजवार लिखती हैं- "अनु अपने समस्त सामाजिक, मानसिक ग्रंथियों से छुटकारा पाकर स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्राप्त करने की 'शेषयात्रा' पूरी कर लेती है।"[170]

1.7 विवाह को लेकर बदलता दृष्टिकोण

आधुनिक समय में जब मनुष्य की मानसिकता में परिवर्तन आया है तो उनकी नीति विषयक धारणाएँ भी परिवर्तित होती नज़र आ रही हैं। और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि आज का मनुष्य अपना निर्णय भावनाओं में बह कर नहीं, तर्क के आधार पर लेने लगा है। यही वजह है कि आज हर विषय पर उसका दृष्टिकोण परिवर्तित हो रहा है। भौतिक और वैज्ञानिकता के इस दौर में जीवन को सही अर्थों में भोगने का दृष्टिकोण पनप रहा है। पहले की तरह व्यक्ति के भीतर त्याग, खुद को दबाने जैसी प्रवृतियाँ अब देखने को नहीं मिलती। इससे उसकी पूर्व स्थापित नैतिकता को कहीं न कहीं चोट पहुँची है। आधुनिक मनुष्य की नैतिकता की अपनी व्याख्या है, जो स्थापित नैतिकता की व्याख्या से कहीं भी मेल नहीं खाती। इसी के साथ विवाह को लेकर व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। विवाह को व्यक्ति अब एक रिश्ते की तरह नहीं अपितु बंधन की तरह देखने लगा है। और जब रिश्तों को बंधन की तरह देखा जाने लगे तो वह रिश्ता अर्थहीन लगने लगता है। इस तरह आज 'सात फेरे, सात जन्म' जैसी बातें अपना महत्त्व खोती जा रही हैं। 'शेषयात्रा' में लेखिका ने इन्हीं सब स्थितियों को शब्द बद्ध कर विवाह के प्रति बदलते दृष्टिकोण से परिचय करवाने का सफल प्रयास किया है। प्रणव ने लम्बी साँस लेकर कहा- "अनु तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करती, हमारे सम्बन्ध खत्म हो गए हैं। मैंने अपना रास्ता चुन लिया है। मैं चाहता हूँ कि तुम भी अपनी ज़िन्दगी अपने आप गढ़ो।

---

[170] स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ- डॉ. शीला रजवार

अपने आप खेओ।"[171] वह आगे अनु को समझाते हुए कहता है कि "वह सब बातें दुहराने से कोई फायदा नहीं है अनु, हमारा-तुम्हारा साथ रहना असंभव है। मैं फ्री होना चाहता हूँ।"[172] जहाँ पहले पूरी रस्मअदाई से विवाह करवाकर ये मान लिया जाता था कि विवाह पूर्ण हो गया है और अब दो लोग करीब हैं, दिल से जुड़ गए हैं। पर सिर्फ रस्मों रिवाज़ से विवाह करवा देने से रिश्ते नहीं जुड़ जाते। अब इस तरह के विवाह को लेकर दृष्टिकोण बदल गया है। "वह यह भी जानती है कि रस्मअदाई से न तो विवाह होते हैं, न तलाक़।"[173]

आज शिक्षित स्त्री-पुरुष विवाह सम्बन्ध में मात्र प्रणय, उद्वेग या पागलपन की तलाश नहीं करते बल्कि परस्पर मैत्री की बात सोचते हैं। एक स्त्री और पुरुष, विवाह के पश्चात् हमेशा पति-पत्नी की तरह ही नहीं बल्कि मित्र की तरह भी विवाह संबंधों का निर्वाह कर सकते हैं या नहीं। प्रणव जब नमिता के साथ सम्बन्ध में होता है तो अपने और नमिता के रिश्ते को कोई नाम न देकर, सोचता है "इस सम्बन्ध में प्रणय नहीं था, उद्वेग या पागलपन नहीं था, एक मैत्री थी, एक सहजता, हर चीज़ में बराबर के साथी, हर निर्णय में बराबर की स्वतंत्रता। ज़िन्दगी में सिर्फ एक ही रिश्ता नहीं होता पति-पत्नी का। स्त्री-पुरुष संबंधों के अनेक पहलू होते हैं जैसे उसका नमिता से संबंध।"[174]

अनु आत्मनिर्भर हो जाने पर परम्परागत स्त्रियों की तरह विवाह को जीवन का अनिवार्य अंग नहीं मानती। वह पुरुष की ज़रूरत को ही अपने जीवन से नकारती हुई कहती

---

[171] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 62-63

[172] वही, पृष्ठ 63

[173] वही, पृष्ठ 79

[174] वही, पृष्ठ 100-101

है- "अगर कुछ न भी मिले तो भी कोई शिकायत नहीं होगी। अपनी डॉक्टरी की उपाधि तो होगी, सुख-चैन से तो रह सकूंगी, काम करने का संतोष तो मिलेगा। स्थाई रूप से पुरुष जीवन में न हो तो, न हो। ज़रूरत भी किसे है।"[175] उपन्यास को पढ़ते हुए हम पाते हैं कि अनु स्वयं अपने जीवन साथी के रूप में दीपांकर को चुनती है पर वह उन रस्मों रिवाजों को बहुत ज़्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं मानती जो शादियों में की जाती है। क्योंकि उन रस्मों रिवाजों को पूरी रीति से निभाने पर भी उसका और प्रणव का रिश्ता नहीं चल सका। इसलिए दो लोगों का एक दूसरे से जुड़ना रस्मों पर आधारित हो ऐसा वह नहीं मानती। "पर संगीत, मेहंदी, हल्दी, इन सब रस्मों को सहेलियों के इसरार करने पर भी स्पष्ट मना कर दिया। उसे लगा कि यह सब नाटक उससे झेला नहीं जाएगा।"[176]

जहाँ पहले विवाह में स्त्री और पुरुष में बराबरी जैसी कोई बात नज़र नहीं आती वहीं तर्क के इस दौर में स्त्रियाँ और पुरुष विवाह के लिए दोनों की सहमति के साथ साझेदारी और बराबरी की भी अहमियत को समझते हैं। दीपांकर और अनु का विवाह तय होता है और अनु जानती है कि प्रणव की तरह दीपांकर अनु पर अपने निर्णय थोपा नहीं करेगा बल्कि उसे अपना निर्णय लेने से दीपांकर कभी नहीं रोकेगा, दीपांकर अपने लिए महात्वाकांक्षी नहीं है। अनु सोचती है "यह होगी बराबर की साझेदारी, न कोई बड़ा, न छोटा; न सुपीरियर, न इनफीरियर।"[177]

---

[175] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 117

[176] वही, पृष्ठ 127

[177] वही, पृष्ठ 128

अतः प्राचीन काल के विवाह और आधुनिक युग के विवाह में अंतर दिखाई देने लगा है। आज आधुनिकता बोध से संपन्न व्यक्ति ने इस विवाह के ढाँचे में आमूल-चूल परिवर्तन किये हैं। उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों के माध्यम से विवाह को सामान्य विवाह न मानकर उसे एक नवीन दृष्टि से देखा है। अब उनके पात्र बँधी-बँधाई परंपरा में पड़कर शादी नहीं कर रहे हैं अपितु प्रेम के माध्यम से, व्यक्तित्व को जानकर, स्थिति और परिस्थितियों से अवगत हो कर, मस्तिष्क से चिन्तन करके, अच्छे-बुरे की पहचान करके ही विवाह का निर्णय लेते हैं।

1.8 पति-पत्नी के टूटते सम्बन्ध

आधुनिक सन्दर्भ में विशेषकर स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्त्री-पुरुष संबंधों का स्वरूप ही बदल गया है। आज के युग में परिवार की सबसे बड़ी समस्या पति-पत्नी का सम्बन्ध है। स्त्रियाँ अब आत्मनिर्भर हैं। पुरुषों में अब भी अधिकारवादी प्रवृति विद्यमान है। इसलिए दोनों के बीच में संघर्ष अवश्य होता रहता है। 'शेषयात्रा' उपन्यास में हम पाते हैं कि यहाँ अनु आत्मनिर्भर नहीं है परन्तु अंत तक आते आते अनु अपने साहस और संघर्ष से अपनी दारुण नियति को बदलने में कामयाब हो जाती है। बड़ी लल्ली और उनका विदेश में रहनेवाला बेटा प्रणव डौली बीवी को देखने के लिए आते हैं। डौली घर की लड़की है। वह खूब एशो-आराम से रहती है। लेकिन उसे देखने से पहले प्रणव अनु को देख लेता है। अनु उसे बहुत पसंद आती है। वह माँ को अपनी पसंद बताता है। बड़ी लल्ली रोती है, पर प्रणव की पसंद को वह नहीं ठुकरा पाती, उनकी शादी हो जाती है। नई साड़ी और सतलड़ा हार में अनु बेहद खूबसूरत दिखती थी। उपन्यास में हम देखते हैं कि प्रणव विभा से कहा करता है कि वह अपनी जीवन संगिनी का चयन बहुत ठोक बजाकर करेगा, पर अनु को देखते ही वह रीझ जाता है। "मुझे कैरियर गर्ल

नहीं चाहिए थी, प्रणव ने कहा, मैं चाहता था सरल, स्नेहशील बीवी, जिसके साथ बैठकर मुझे सुख-चैन मिले।"[178]

प्रणव हमेशा नंबर वन रहना चाहता था। घर, गाड़ी और पत्नी सब में। अनु को भी खुद अपने रूप का पता नहीं था। उसको किसी ने बताया भी नहीं था कि वह बेहद सुंदर है। प्रणव ने उसे ढूँढ निकाला था। वाटरमैन ने उसके सौंदर्य की तारीफ़ करते हुए कहा था "तुम जैसी ब्यूटी की ज़िन्दगी सिर्फ ओ.के. ही है? तुम्हें तो मॉडल बनना चाहिए, टेलीविज़न की अभिनेत्री, तुम घर में अपना सौंदर्य बर्बाद कर रही हो।"[179] उसके भाग्य की प्रशंसा करते हुए जब बिरादरी की औरतों ने कहा- "लौंडिया का भाग जगा है। विलायत का डॉक्टर, इतना गहना-कपड़ा, तब अनु को लगा, हाँ शायद भाग्योदय हुआ है। वह प्रणव के प्रति कृतज्ञ थी, इतना सब कुछ, सिर्फ एक छोटी-सी आकस्मिक झलक पाने भर ही से।"[180]

उसकी मासूमियत देखकर रेखा ने पिघलकर कहा था " प्रणव, टेक केयर ऑफ हर, शी इज़ जस्ट ए किड।"[181]

आरम्भ में प्रणव ने उसे विदेश में सारे शहर की रानी बना कर रखा था। अनु ने जब विदेश में अपना घर देखा तो उसे लगा कि वह सचमुच रानी है। सवा लाख डॉलर का घर, तैंतीस हज़ार डॉलर की कार, कमरे ही कमरे, पलंग, टेलीविज़न, तरह-तरह की मशीनें। दोनों

---

[178] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 51

[179] वही, पृष्ठ 33

[180] वही, पृष्ठ 31

[181] वही, पृष्ठ 21

पति-पत्नी 'गोल्डन कपल' कहकर पुकारे जाते हैं। "प्रणव के पास गुण है, मेधा है, लोगों को जीतने का नुस्खा है, अनु में घमंड नहीं है। हर चीज़ होने के बाद भी मुस्कुराहट में एक शर्मीलापन, जिसे लोग बहुत चार्मिंग पाते हैं। प्रणव से मशवरा किए बिना वह कोई निर्णय नहीं ले पाती, 'आज क्या खाओगे' से लेकर 'मैं शाम को क्या पहनूँ' सभी कुछ प्रणव की मर्जी से होता है।"[182]

अनु के पास सभी प्रकार की चीजें हैं। वह पैसे बचाने के बजाय उसे खर्च करना अधिक पसंद करती है। एक साड़ी दो-तीन बार पहनने से मन भरने लगता है। कितने दिन, कितने हफ्ते, कितने महीने और साल बीत गए उसका हिसाब अनु के पास नहीं है। वह प्रणव से कभी भी कुछ नहीं पूछती, जैसे किससे मिलता है? क्या करता है? आदि। क्योंकि वह अपनी ज़िन्दगी से बहुत खुश थी।

अचानक एक दिन अनु की ज़िन्दगी में एक मोड़ आ जाता है। प्रवासी भारतीयों पर एक डॉक्यूमेन्ट्री बन रही थी। उनका नाम किसी ने सजेस्ट किया था। उनके घर में ही उसकी शूटिंग होने वाली थी। चन्द्रिका राणा उस फिल्म की डायरेक्टर थी। शूटिंग के दौरान कई लोगों ने कहा कि प्रणव यू आर लकी। "आपके पास भारत का अलभ्य रत्न है।"[183] उस रात अनु ने जाना था कि प्रणव के होंठ कितने क्रूर थे। उसे सहलाने, दुलारने वाला उस रात क्रूर बन गया था। कारण क्या था इससे अनु अपरिचित थी। वह देर तक कुचली, टूटी हुई पड़ी रही। जो ज़िन्दगी इतने आराम से बसर हो रही थी वो ज़िन्दगी अब लड़खड़ाने लगती है। "प्रणव की लम्बी-लम्बी

[182] वही, पृष्ठ 31

[183] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 41

चुप्पियाँ, उसका अनमनापन, उसका बात-बेबात पे गरम हो आना, अनु को झिड़क देना।"[184] इतना ही नहीं फिल्म बनाने के चक्कर में प्रणव का डॉक्टरी छोड़ने, घर और गाड़ी बेचने की सोचना, परिवार को तहस-नहस कर देता है। शादी के चार-साढ़े चार वर्ष बाद उन दोनों में आए दिन झगड़े होते रहते थे। ज़िन्दगी अब ज़िन्दगी जैसी नहीं रह गई थी, और यह उपन्यास का वह मोड़ है जहाँ हम पति-पत्नी के टूटते संबंधों की त्रासदी को विशेष रूप से महसूस कर पाते हैं। पति या पत्नी में से कोई भी जब अपने रिश्तों के प्रति जिम्मेदारियों से विमुख होने लगता है तो सम्बन्ध टूटने की स्थिति तक पहुँचने लगते है।

प्रणव द्वारा अनु को त्याग दिए जाने के बाद अनु प्रणव की पिछली ज़िन्दगी के बारे में ज्योत्सना से जान पाती है। ज्योत्सना उसे बताती है "शिकागो में उसकी परमानेंट गर्लफ्रेंड है, डायवोर्स्ड। उससे तो खुल्लम-खुल्ला उसका सम्बन्ध है। सारे डॉक्टर जानते हैं। जब भी शिकागो जाता है, उसी औरत के पास ठहरता है।"[185]

यह सब सुनने के बाद अनु एकदम पागल-सी हो जाती है। इतना सबकुछ हो जाने के बाद भी अनु अकेलेपन के डर से अभी भी प्रणव के साथ ही रहना चाहती है। जो सम्बन्ध इतनी खुशियों और सुख-सुविधाओं के साथ प्रारम्भ हुआ था, उसका अंत इस प्रकार होता है कि अनु पूरी तरह बिखर जाती है। और इसकी परिणति पति- पत्नी के सम्बन्ध पूरी तरह टूट कर अलग हो जाने पर होती है।

---

[184] वही, पृष्ठ 42

[185] वही, पृष्ठ 67

1.9 निर्णय लेने व जीवनसाथी के चयन की स्वतंत्रता

हिंदी उपन्यासों में नारी की छवि को उपेक्षित-सा दिखाया जाता है जहाँ वह रूढियों, रीति-रिवाजों, रस्मों आदि से खुद को मुक्त ही नहीं कर पाती। पर स्वतंत्रता के बाद हम पाते है कि उपन्यासों में नारी एक भिन्न धरातल पर खड़ी है। और अब वह उन मान्यताओं का विरोध भी करने लगी है, जो मात्र उसे कमतर दिखाने के लिए बनाई गई थी। मात्र घर गृहस्थी ही उसकी दुनिया नहीं है, अब स्त्री उस दमघोंटू वातावरण से निकलने के लिए छटपटा रही है। उसमें शिक्षा का प्रसार और स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास की कामना प्रबल हुई है। अपने लिए समानता का अधिकार पाने के लिए अब वह दृढ़ संकल्पित है। विवाह जीवन का एक आवश्यक अंग है, और विशेषकर नारी जीवन का क्योंकि विवाह के बाद उसका घर, परिवार, वातावरण और ज़िम्मेदारियाँ पूरी तरह बदल जाती है। किंतु आधुनिक नारी आज पारम्परिक ढंग से विवाह की वेदी पर खड़ी रहना नहीं चाहती। विवाह संस्था के एकपक्षीय दायित्व को अब वह अस्वीकार करने लगी है। आज वह मात्र अपना निर्णय लेने के लिए ही नहीं बल्कि अपना जीवनसाथी स्वयं चुनने का अधिकार भी रखती है।

अपने निर्णय स्वयं लेना और अपना जीवन साथी स्वयं चयन करना नारी जीवन का विशिष्ट पक्ष है। क्योंकि इस पर नारी का पूरा जीवन ही आधारित होता है। और आज के समाज में जब स्त्री की शिक्षा आदि में जागरूकता आई है, स्त्री अपने निर्णय लेने और स्वयं जीवन साथी के चयन के महत्त्व को भली भाँति समझने लगी है। शिक्षा से जब उसका व्यक्तित्व निखरा है तो नए घर में संतुलन-समायोजन की समस्याएँ और अधिक बढ़ने लगी हैं। ऐसे में तो स्वयं का निर्णय और उचित जीवन साथी के चयन की आवश्यकता और अधिक बढ़ गई है।

लेखिका ने 'शेषयात्रा' में निर्णय लेने, चयन करने और स्वतंत्र होने को अनु के माध्यम से दर्शाया है। अमेरिकी डॉक्टर प्रणव अनु से विवाह कर उसे विदेश ले जाता है। अनु एक सामान्य से परिवार की लड़की है फिर भी अमेरिका का डॉ. और मेधा से भरपूर प्रणव उसे पसंद करता है। क्योंकि वह एक ऐसी ही पत्नी की तलाश में था, जो बहुत ज़्यादा उसे किसी काम में रोके टोके न, मात्र मौन बनी घर पर बैठी रहे। दरअसल प्रणव के इस विवाह से इतर भी कई स्त्रियों से सम्बन्ध थे इसलिए वह एक मासूम, सीधी-साधी और मूर्ख पत्नी चाहता था। वह अनु से कहता भी है "उसे एक बेवकूफ लड़की जो चाहिए थी। तुम्हें देखकर ही जान गया कि तुम काफी मूर्ख हो।"[186]

अनु एक परम्परागत युवती है, और अपने घर वालों के कहने पर इस विवाह के लिए मान जाती है। पर अगर हम देखें तो यह रिश्ता घरवालों द्वारा थोपा गया रिश्ता है। उषा प्रियंवदा ने यहाँ हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि इस तरह की विवाह व्यवस्था आज कितनी खोखली नज़र आती है। एक झटके में अनु का जीवन बदल जाता है। कहाँ वह बी.एस. सी. में पढ़ने वाली लड़की और अचानक उसकी शादी। इसका ख़ामियाज़ा अनु को भुगतना पड़ता है।

प्रणव अपने द्वारा तोड़े गए विवाह में भी स्वयं को निर्दोष साबित करना चाहता है और भारतीय विवाह पद्धति पर ही आरोप लगाता है- "ऐसी शादियाँ हमेशा रिस्क होती हैं; एक

[186] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 89

छोटी-सी मुलाकात, सिर्फ चेहरा देखकर पसंद कर लेना, आगे स्वभाव कैसा निकलेगा, पटेगी या नहीं। यह सब कहना बड़ा मुश्किल होता है।"[187]

पति द्वारा त्याग दिए जाने पर भी अनु परम्परागत स्त्री की तरह ता-उम्र रोती बिलखती नहीं रहती बल्कि इस सामर्थ्यहीनता को तोड़कर आगे बढ़ती है। और अपनी नियति को बदलने में सफल भी होती है। अपनी आगे की ज़िन्दगी के निर्णय स्वयं लेकर वह आत्मनिर्भर बनने की ओर कदम बढ़ाती है और एक डॉक्टर बन जाती है। इतना ही नहीं आत्मनिर्भर हो जाने के बाद वह स्वयं के निर्णय तथा स्वयं की पसंद से अपने जीवनसाथी दीपांकर को चुनती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'शेषयात्रा' में भी जो विवाह-विच्छेद हुआ वह भी हर बार की तरह एक पुरुष द्वारा ही तोड़ा गया। लेकिन अब परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। अब स्त्रियाँ इतनी सक्षम हैं कि जीवन के किसी भी मोड़ पर जीवन साथी के अयोग्य और गैर जिम्मेदार होने पर वे उसे छोड़कर नए जीवन साथी का चयन कर सकती हैं।

1.10 यौन-संबंधों का स्वच्छंद चित्रण

यौन-संबंध मानव जीवन की एक स्वाभाविक आवश्यकता है, और हम इस बात से भी परिचित हैं कि बिना इसके सृष्टि का संचालन असंभव है। " 'काम' शब्द का प्रयोग प्रायः स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण सम्बन्धी रसपूर्ण व्यवहारों के प्रति किया जाता है। जैसे भूख लगती है, प्यास लगती है, उसी प्रकार काम-भावना भी मनुष्य की एक स्वाभाविक आवश्यकता है।"[188]

---

187 शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 33

188 उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में आधुनिकता बोध- संदीप विश्वनाथराव रणभिरकर, पृष्ठ 185

काम वासना फ्रायड के अनुसार अचेतन मन की सबसे प्रबल भावना है। आज कथा-सहित्य में यौन-संबंधों को लेकर बनी हुई रूढ़ियों को तोड़ा जा रहा है और रचनाओं में यौन-संबंधों का स्वच्छंद चित्रण होने लगा है। यौन-संबंधों के प्रति जो निषेध भावना थी उसमें कमी आई है। उषा प्रियंवदा ने भी अपने उपन्यासों में यौन-संबंधों का चित्रण किसी निषेध भावना से नहीं बल्कि स्वतन्त्र और सहज रूप में किया है। यह हमें 'शेषयात्रा' में भी देखने को मिलता है।

इस पितृसत्तात्मक समाज में जहाँ समाज का नियामक पुरुष ही है। वहाँ पुरुषों और स्त्रियों के लिए अलग-अलग नैतिक मूल्य तय किये गए हैं। इस समाज में स्त्रियों द्वारा उठाए गए हर कदम पर सबकी दृष्टि गड़ी रहती है पर पुरुषों पर और उनके द्वारा उठाए गए कदमों पर कोई रोक-टोक तथा निगरानी नहीं है। हम पाते हैं कि 'शेषयात्रा' का प्रणव भी इसी पुरुषवादी समाज का प्रतिनिधित्व करता है और इतनी मासूम पतिव्रता पत्नी के होते हुए वह विवाहेत्तर सम्बन्ध स्थापित करता है और किसी एक स्त्री के साथ नहीं बल्कि नीरजा, विभा, चन्द्रिका, नमिता आदि कई स्त्रियों के साथ स्वच्छंद रूप से यौन संबंधों में संलिप्त रहता है। वह बहुत जल्दी स्त्रियों से ऊबने लगता है, इसलिए कुछ ही वर्षों में वह अनु से भी ऊब जाता है, और अनु को अपने स्वच्छंद यौन-संबंधों में बाधा की तरह देखने लगता है। इसी कारण प्रणव अनु से अलग होने की बात करता है, और उसे त्यागकर चन्द्रिका के साथ चला जाता है। पहले-पहल इस तरह प्रणव द्वारा अनु को अकेला छोड़ देने पर उसका जीवन बहुत असंतुलित हो जाता है, पर आगे हम अनु को एक सशक्त नारी के प्रतीक रूप में अपने सामने पाते हैं। वह एक डॉक्टर बन कर आत्मनिर्भर जीवन यापन करती है। पर इसके साथ ही साथ वह अपनी शारीरिक माँगों को भी झुठला नहीं सकती। वह दीपांकर से विवाह पूर्व ही यौन-संबंध स्थापित

करती है। "दीपांकर एक आवेग में अनु का माथा, पलक, होंठ, ठोढ़ी, गले को बार-बार चूमने लगा।"[189]

अनु अपने भीतर एक ठंडापन महसूस करती है, पर वह पूरी तरह खुद को मुक्त भी छोड़ देना चाहती है। वह स्वयं को दीपांकर के सामीप्य के लिए तैयार कर लेती है "उसने दीपांकर की टाई खोलकर काउच के हत्थे पर डाल दी, और बहुत हल्के-हल्के उसकी कमीज़ के बटन खोलने लगी, दीपांकर का सीना एकदम चिकना-सपाट था, बिना बालों का।"[190]

यहाँ कहीं भी यौन-संबंधों के प्रति कोई निषेध भावना देखने को नहीं मिलती, बल्कि सबकुछ एकदम स्वच्छंद और मुक्त है "दीपांकर की शर्मीली उँगलियाँ उसके कपड़ों से उलझ रहीं थीं। अनु के मन में दीपांकर के लिए कहीं कोमलता और लाड़ फड़फड़ाने लगा, चिड़िया के नए बच्चे की तरह, सामने की दुनिया में कच्चे पंख पसारकर उड़ने को उत्सुक, साथ में भयभीत। उस अँधेरे में दीपांकर अनु को कसकर पकड़े था।"[191] अनु इस पल में पूरी तरह समर्पित रहती है और दीपांकर भी अनु के प्रेम में आकंठ डूबा नज़र आता है- "दीपांकर की उँगलियाँ अनु के चेहरे को हल्के-हल्के उकेर रही थीं।"[192]

---

[189] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 123

[190] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 123

[191] शेषयात्रा: उषा प्रियंवदा, पृष्ठ 123

[192] वही, पृष्ठ 123

"यह क्षण आत्मीयता के चंद क्षण होते हैं जब अपने शरीर के साथ-साथ अपनी आत्मा का भी उघड़ आना असंगत नहीं लगता।"[193]

स्पष्ट है कि आधुनिक युग में नारी की काम सम्बन्धी मान्यताओं में परिवर्तन आया है। वह काम संबंधों में स्वतन्त्रता का समर्थन करती है। आज प्राचीन सांस्कृतिक मान्यताओं के ध्वंस पर नवीन बंधन-विहीन नैतिकता उभर रही है। नारी- समाज में मुक्त यौन-संबंधों के प्रति आग्रह बढ़ रहा है और इसका स्पष्ट चित्रण आधुनिक साहित्य में देखने को मिलता है।

निष्कर्षतः उषा प्रियंवदा की रचनाएँ स्वातंत्र्योत्तर भारत की बदलती ज़िन्दगी के दस्तावेज़ हैं। उन्होंने वर्तमान परिवेश के जीवन का ज्वलंत चित्रण अपने कथा साहित्य में प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से सम-सामयिक जीवन के कटु एवं निजी यथार्थ को उभारने की कोशिश की है। आधुनिकता बोध के संदर्भ में उषा प्रियंवदा के कथा-सहित्य में हम दृष्टि डालते हैं तो यहाँ निश्चय ही भारतीय परम्परा को आत्मसात करने के साथ-साथ पश्चिम का प्रभाव भी दृष्टिगोचर है। आधुनिकता बोध का स्वर उनके कथा साहित्य में अधिक सशक्त ढंग से मुखरित हुआ है।

लेखिका के कथा-साहित्य में अकेलापन और अजनबीपन, ऊब, घुटन और संत्रास, पागलपन, प्रवासी जीवन में संघर्ष और मोहभंग की स्थिति, अस्तित्व की तलाश, विवाह को लेकर बदलता दृष्टिकोण, पति-पत्नी के टूटते सम्बन्ध, निर्णय लेने व जीवनसाथी के चयन की स्वतन्त्रता, यौन-संबंधों का स्वच्छंद चित्रण आदि के फलस्वरुप उत्पन्न आधुनिक स्थितियों को

[193] वही, पृष्ठ 123-24

उजागर किया गया है, जो आधुनिकता बोध का परिचायक है। उनके उपन्यास 'शेषयात्रा' में आधुनिक जीवन की तीव्र अनुभूतियों और संवेदनाओं का परिचय मिलता है।

निश्चय ही उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में जो जीवन और उसकी अभिव्यक्ति हुई है वह वर्तमान संदर्भ में भी प्रासंगिक लगता है। अतः उनके उपन्यास साहित्य को वर्तमान युग की स्पंदनमयी ज़िन्दगी के सप्राण पन्ने कहना सार्थक एवं समीचीन है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि उषा प्रियंवदा ने समसामयिक युग-बोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में पकड़ने और ईमानदारी पूर्वक अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है।

उपसंहार

आधुनिक युग में चारों तरफ विज्ञान का बोल-बाला है। जिससे हमारी दृष्टि वैज्ञानिक हो गई है। सोच आधुनिक हो गई है और हर चीज़ को देखने का नज़रिया तार्किक हो गया है। आधुनिकता मानव जीवन को नवीनता प्रदान करती है और साहित्य को भी। आधुनिकता के कारण अंधविश्वास टूटे हैं। वैज्ञानिक प्रगति और संचार क्रांति के कारण पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक सम्बन्धी धारणाओं में परिवर्तन आया है। जीवन का रूप, गति और जीने के ढंग में काफी कुछ अंतर आ गया है। जीवन ही नहीं वरन जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है। यहाँ तक कि हमारी भावनाएँ और उनसे जुड़े बोध भी बदल गए हैं। भावनात्मकता पर बौद्धिकता भारी होती गई है। इसलिए साहित्य में आधुनिकता का आना ज़रूरी हो गया है क्योंकि साहित्य समाज की देन है और साहित्यकार समाज से अनुभूति ग्रहण करता है। आज का साहित्यकार अपने युग के प्रति अधिक सचेत होता जा रहा है। वह आधुनिकता की चुनौती को स्वीकार कर, अपनी अनुभूतियों के प्रति प्रतिबद्ध होकर अभिव्यक्ति करता है। आज वह अपने विवेक और अभिव्यक्ति में आधुनिक है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि विभिन्न शब्दकोशों, आलोचकों और विद्वानों के अनुसार 'आधुनिक' शब्द की परिभाषा भिन्न-भिन्न ठहरती है, जो अपने अर्थ-विस्तार में कई आयामों को समाहित किये हुए है; यथा कालवाची सन्दर्भ और समसामयिकता के अर्थ में। उपर्युक्त सभी परिभाषाओं और अर्थों के अनुसार, आधुनिक का अर्थ केवल 'समसामयिकता' से नहीं लेना चाहिए अपितु विचारपरकता और मूल्यबोध से भी ग्रहण करना चाहिए।

ध्यातव्य है कि 'आधुनिक' शब्द का अर्थ केवल शब्दकोशों तक सीमित न हो, इसलिए उसके अर्थों को कई सन्दर्भों जैसे सामाजिकता, कला के भिन्न-भिन्न रूप और प्रगतिशीलता इत्यादि में भी समझा जाना आवश्यक है। इसी सन्दर्भ में पश्चिम में 'आधुनिक' की परिभाषा

सामाजिक, प्रगतिशील और कलात्मक रूप में दी गई है। उपर्युक्त विद्वानों के विचारों के केंद्र में मानव जीवन के विकासक्रम की व्याख्या है, जो अपने पूर्ववर्ती समय से तो भिन्न है किंतु प्रगतिशीलता की अनुगामी है।

दृष्टि वह है जिसमें एकरूपता नहीं हो सकती। यही दृष्टि- वैविध्य आलोचकों व विद्वानों को एक अलग नज़र देता है, भाषायी ताकत देता है, जिससे वह अपने विचारों की दुनिया तैयार करते है। यहीं से शब्दों को पहले अर्थ फिर विधा के रूप में समझा गया। जैसे कहानी का पहले एक निश्चित अर्थ था, फिर उसमें कई तत्व समाहित हुए। इसी प्रकार नए-नए साहित्यिक तत्वों के सम्मिश्रण से नई विधाएँ सामने आयी। उपर्युक्त विचारकों में किसी ने आधुनिकता को कालवाची रूप में देखा तो किसी ने मानवता के सन्दर्भ में, किसी ने आधुनिकीकरण के सन्दर्भ में तो किसी ने संघर्ष चेतना के रूप में। इस प्रकार आधुनिकता सत्य को ग्रहण करने की एक यथार्थवादी दृष्टि है। आधुनिकता बाह्य आरोपित वस्तु नहीं होती है। उसमें देशकाल की अनुभूति का समावेश होता है। आधुनिक साहित्य रचयिता युगीन परिवेश का सीधा साक्षात्कार करता है और बदलते हुए सन्दर्भों को ग्रहण करते हुए रचना करता है। आधुनिकता देश काल सापेक्ष्य होते हुए भी, यह समकालीनता के बंधन में नहीं बांधी जा सकती। आधुनिकता अतीत के व्यतीत सन्दर्भों को ठुकराकर उसे वर्तमान की प्रासंगिकता से जोड़ती हुई भविष्य में सम्भाव्य बनाने का प्रयत्न करती है।

मनुष्यता के बढ़ते विकास क्रम और समय के सिलसिलेवार क्रम में कई चीज़ों का बोध विकसित होता है। आधुनिकता बोध कैसे विकसित हुआ? यह भी एक महत्वपूर्ण सवाल है। औद्योगिक क्रांति के होने और उसके परिणामस्वरूप जीवन शैली में बदलाव के कारण आधुनिकता बोध का जन्म हुआ। जिसके केंद्र में विकसित चेतना, विज्ञान और तर्क की दुनिया है। इस भाव बोध का जन्म सांस्कृतिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप हुआ। पुरानी संस्कृति का

कुछ अंश और नवचेतन के कुछ तत्व आधुनिकता बोध की अवधारणा को यथार्थपरक रूप प्रदान करते हैं। इसलिए इसके सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थ भी हैं। अतः कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध एक ऐसी सोच या विचार धारा है जो न केवल हमें रुढियों से मुक्ति दिलाती है बल्कि नई विचार धारा या चिन्तनशक्ति को स्थापित करने की भी प्रेरणा देती है। इससे हमारा साहस और विवेक जागृत होता है और विकास की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त होता है। आधुनिकता बोध की दृष्टि विवेकपूर्ण दृष्टिकोण की स्थापना करती है। अतः आधुनिकता बोध वह सहज, स्वाभाविक और गतिशील प्रक्रिया है जो जीवन को सही संदर्भ में समझने की दृष्टि प्रदान करती है।

इस प्रकार आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकता बोध के अंतर को उसके अर्थ एवं परिभाषाओं के माध्यम से भी भली-भांति समझा जा सकता है। अगर आधुनिकता बोध को देखें तो कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध एक ऐसी सोच या विचारधारा है जो न केवल हमें रूढियों से मुक्ति दिलाती है बल्कि नई विचारधारा या चिन्तनशक्ति को स्थापित करने की भी प्रेरणा देती है। हम जानते हैं कि 'आधुनिकता' को 'आधुनिक' ही आधार प्रदान करता है और 'आधुनिक' से होकर ही आधुनिकता और आधुनिकता बोध तक पहुँचा जा सकता है। तो कुछ मायने में अंतर होने के साथ-साथ ये सभी आपस में पर्याय भी माने जाते हैं।

प्रथम अध्याय में आधुनिकता को चार भागों में विभाजित करके उसको संक्षेप में बताने का प्रयास किया गया है। अपने भीतर के अनुभावों को वक़्त के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखना ही आधुनिकता है। आधुनिक, आधुनिकता और आधुनिकता बोध आदि शब्द आधुनिकता के पर्याय रूप हैं। आधुनिकता की व्याप्ति विज्ञान, धर्म, इतिहास, सामयिकता और नवीनता के साथ जुड़ी है क्योंकि हर युग में जीवन दृष्टि परिवेश से प्रभावित होती है। आधुनिकता की संकल्पना और स्वरुप विवादास्पद है। आधुनिकता अपने आप में गत्यात्मक, जटिल, गतिशील,

कालातिक्रमिक, सर्वांग, क्रियाशील सृजनात्मक, विद्रोहात्मक, सार्वभौमिक एवं कालजयी चेतना है, जिसमें समाज संचलन की व्यवस्था जटिल होती है। उस प्रक्रिया से साहित्य जुड़कर अपना अर्थ प्राप्त करता है। आधुनिकता नवीनीकृत बोध होने के कारण इसमें तर्क, परीक्षण एवं विवेक महत्त्वपूर्ण होता है। वह अपने आप में मूल्य नहीं है। अस्तित्ववादी विचारधारा ने अकेला, संत्रस्त, अलगावित एवं पीड़ामय बनाया है, जिसे हम आधुनिकता कहते हैं वह आज के संदर्भ में संकटबोध है। क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से मूल्य संक्रमण नज़र आ रहा है। आधुनिकता में धर्म एवं संस्कृति के प्रति निषेध का कारण वैज्ञानिक चेतना है। विज्ञान आधुनिकता नहीं है किंतु वह आधुनिकता का अवसर अवश्य सिद्ध हुआ है।

द्वितीय अध्याय उषा प्रियंवदा के व्यक्तित्व व कृतित्व पर आधारित है। इनका लेखन 1950 के दशक से शुरू हुआ। इन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत कहानी लेखन से की किंतु अपनी कलम को केवल कहानी लेखन तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि आगे चलकर 1961 में अपने पहले उपन्यास के प्रकाशन से, उपन्यास के क्षेत्र में भी स्वयं को एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर के रूप में स्थापित किया। किसी भी रचनाकार के कृतित्व का मूल्यांकन करते समय उसकी समसामयिक परिस्थिति, परिवेश और देशकाल को भी देखा जाना आवश्यक होता है। ये वह दौर था जब संबंधों के टूटन की आवाज़ और संयुक्त परिवार के बिखरने की अनुगूँज सुनाई देने लगी थी। अतः ये तत्व उषा प्रियंवदा के साहित्य में भी प्रतिबिंबित होते हैं। हमें इनकी रचनओं में आपसी संबंधों का बिखराव और पश्चिमी परिवेश की भरपूर झलक दिखलाई देती है। उन्होंने अपने पहले उपन्यास 'पचपन खंभे लाल दीवारें' से ही लेखन में शानदार दस्तक दी है। कालांतर में 'रूकोगी नहीं राधिका', 'शेषयात्रा', 'भया कबीर उदास' और कहानी संग्रहों में लेखिका ने विवाह, सम्बन्ध, इत्यादि की परिधि में ही अपनी लेखनी को सीमित कर दिया। बच्चन सिंह ने 'आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द' पुस्तक में 'विडंबना' का ज़िक्र किया। उषा प्रियंवदा

के साहित्य में भी विडंबना दिखती है, वे स्वयं 'पचपन खंभे लाल दीवारें' में कहती हैं कि ‘जो हम नहीं चाहते, वही करने के लिए विवश हैं'।

उषा प्रियंवदा लगभग सात दशकों से लेखन में सक्रिय हैं। उनके कथा-साहित्य में उनके समय की पहचान और समाजिकता-बोध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। लेखिका वर्तमान में अमेरिका में रहती हैं परन्तु उनका साहित्य सिर्फ पश्चिमी पृष्ठभूमि पर ही आधारित नहीं है बल्कि उसमें भारतीयता की झलक भी दिखाई देती है। यही विशेषता इनके कथा-साहित्य को महत्वपूर्ण बनाती है। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कहानी हो या उपन्यास, उषा प्रियंवदा एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उषा प्रियंवदा एक ऐसी रचनाकार हैं जिन्होंने अपने निजी जीवन के अनुभवों को अपने कथा- साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। वह भारतीय परिवेश के साथ-साथ पाश्चात्य परिवेश से भी परिचित हैं इसलिए इन दोनों सभ्यताओं और संस्कृतियों की विभिन्नता तथा उनके कारणों को अपने कथा साहित्य में उभारने का प्रयास करती हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में मानवीय संवेदनाओं को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। मानवीय संवेदनाओं को सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है। लेखिका परम्परागत रूढ़ियों के प्रति विद्रोह और नई मान्यताओं को अपनाने की कोशिश करती हैं, इसी लिए ऐसी स्थितियों को गहरी संवेदनशीलता से चित्रित करने में सफल भी रही हैं।

आधुनिक हिंदी साहित्य समसामयिक भारतीय समाज की उपज है। इनमें समकालीन महिला लेखन आधुनिक नारी बोध का प्रतिबिंब है। आज की लेखिका नारी की स्थिति को लेकर विह्वल है। परम्परा और आधुनिकता, संस्कार एवं शिक्षा तथा कथनी और करनी के अंतर ने नारी के जीवन में जितना वैषम्य उत्पन्न किया है उसे जागरूक लेखिका पचा नहीं पायी हैं।

आधुनिक हिंदी उपन्यास के मूल में यह पीड़ा ही कार्यरत है तथा इस पीड़ा से मुक्ति पा लेने की उत्कंठा एवम् आत्मान्वेषण की अदम्य चाह भी।

अगर बात उषा प्रियंवदा की करें तो हिंदी कथा साहित्य के क्षेत्र में उषा प्रियंवदा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में विविध परिस्थितियों, परिवेश एवं पात्रों के माध्यम से नारी का 'वस्तु' से 'व्यक्ति' रूप में 'ट्रांसफर्मेशन' चित्रित किया गया है। इनके उपन्यासों में उच्च वर्गीय जीवन की भावहीनता, भौतिकता के अतिरेक के कारण टूटते पारिवारिक संबंधों को भी चित्रित किया गया है।

इस प्रकार आधुनिक रचनाकारों ने जिस भोगे हुए एवं अनुभूत यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति की है, वह यथार्थ बहुआयामी है। इनके लेखन से एक सर्वमान्य सत्य यह उभरा है कि इन्होंने चाँद तारों की काल्पनिक दुनिया देखने के बजाय अपने आपको देखा-परखा और प्रकट किया है। और महिला लेखिकाओं की बात करें तो एक नारी होने के नाते महिला लेखिकाओं ने स्त्री-जीवन के अन्तर्बाह्य जीवनानुभवों को प्रस्तुत किया है। नारी मन का सूक्ष्म अध्ययन भी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों की विषय-वस्तु बना है। आधुनिक कथाकारों की रचना विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों का चित्रण करने के बावजूद अर्थ और काम पर विशेष रूप से केंद्रित रहा है। आर्थिक स्वनिर्भरता की चाह जहाँ पुरुष के स्वामित्व को चुनौती देती प्रकट हुई है वहीं यौन क्रिया को स्त्री पुरुष दोनों के लिए एक समान मानदंड पर स्थिर करने का संकल्प व्यक्त हुआ है। आज के हिंदी महिला लेखन का प्रमुख स्वर आक्रोश का है, विरोध का है। यह आक्रोश और विद्रोह का भाव पुरुष की पुरानी मानसिकता के प्रति है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासकारों ने मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं एवं संकुलताओं को अपने विस्तृत कलेवर में समेट लिया है। परम्परा का निषेध करने वाले, वर्तमान के साथ सक्रिय संग्राम करने वाले तथा भविष्य के प्रति शंकाकुल मानसिकता रखने वाले मध्यवर्गीय

व्यक्ति मन के रेशे-रेशे उतार रखने में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास सफल रहे हैं। मानवीय अस्तित्व की तलाश करना या मानव जीवन के यथार्थ को तलाशना आधुनिक रचनाकार का लक्ष्य है। आधुनिक हिंदी साहित्य के संदर्भ में यही सत्य है। नरेश मेहता, शशि प्रभा शास्त्री, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी आदि अनेक साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने मानव जीवन के यथार्थ को विभिन्न कोण से तलाशने का कार्य किया है। और जहाँ तक उषा प्रियंवदा के योगदान की बात है इन्होंने 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' से लेकर 'अल्पविराम' तक जो सफर तय किया है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। उषा जी का लेखन उन सच्चाइयों का पर्दाफाश करता प्रस्तुत होता है जिन्हें समाज छुपाकर रखना चाहता है। उषा जी के आधुनिक नारी पात्र स्त्री अस्मिता की ऊँचाइयों को छूने के प्रयास में जिन मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था का भाव व्यक्त करते हैं, वह न केवल अन्यत्र दुर्लभ है, वरन् आज की महती ज़रूरत भी है। भारतीय एवं पाश्चात्य परिवेश और परिस्थितियों से जन्मे ये पात्र क्रमिक विकास के अनेक सोपानों को पार कर आत्मान्वेषण करते हुए मुकम्मिल व्यक्तित्व को पा सके हैं।

उषा प्रियंवदा की रचनाएँ स्वातंत्र्योत्तर भारत की बदलती ज़िन्दगी के दस्तावेज़ हैं। उन्होंने वर्तमान परिवेश के जीवन का ज्वलंत चित्रण अपने कथा साहित्य में प्रस्तुत किया है। अपने उपन्यासों के माध्यम से सम-सामयिक जीवन के कटु एवं निजी यथार्थ को उभारने की कोशिश की है। आधुनिकता बोध के संदर्भ में उषा प्रियंवदा के कथा-सहित्य में हम दृष्टि डालते हैं तो यहाँ निश्चय ही भारतीय परम्परा को आत्मसात करने के साथ-साथ पश्चिम का प्रभाव भी दृष्टिगोचर है। आधुनिकता बोध का स्वर उनके कथा साहित्य में अधिक सशक्त ढंग से मुखरित हुआ है।

लेखिका के कथा-साहित्य में अकेलापन और अजनबीपन, ऊब, घुटन और संत्रास, पागलपन, प्रवासी जीवन में संघर्ष और मोहभंग की स्थिति, अस्तित्व की तलाश, विवाह को लेकर बदलता दृष्टिकोण, पति-पत्नी के टूटते सम्बन्ध, निर्णय लेने व जीवनसाथी के चयन की स्वतन्त्रता, यौन-संबंधों का स्वच्छंद चित्रण आदि के फलस्वरुप उत्पन्न आधुनिक स्थितियों को उजागर किया गया है, जो आधुनिकता बोध का परिचायक है। उनके उपन्यास 'शेषयात्रा' में आधुनिक जीवन की तीव्र अनुभूतियों और संवेदनाओं का परिचय मिलता है।

निश्चय ही उनके उपन्यासों में जो जीवन और उसकी अभिव्यक्ति हुई है वह वर्तमान संदर्भ में भी प्रासंगिक लगता है। अतः उषा प्रियंवदा के उपन्यास साहित्य को वर्तमान युग की स्पंदनमयी ज़िन्दगी के सप्राण पन्ने कहना सार्थक एवं समीचीन है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि उषा प्रियंवदा ने समसामयिक युग-बोध को उसकी सही पृष्ठभूमि में पकड़ने और ईमानदारी पूर्वक अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

लेखक	रचना	प्रकाशन
कहानी संग्रह:		
1) उषा प्रियंवदा	फिर वसंत आया	विश्व विजय प्रा.लि., नई दिल्ली
2) उषा प्रियंवदा	ज़िंदगी और गुलाब के फूल	भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं. 2004
3) उषा प्रियंवदा	एक कोई दूसरा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2000
4) उषा प्रियंवदा	कितना बड़ा झूठ	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1976
5) उषा प्रियंवदा	मेरी प्रिय कहानियाँ	राजपाल एण्ड संस, नई दिल्ली, सं. 1974
6) उषा प्रियंवदा	शून्य तथा अन्य रचनाएँ	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2007
7) उषा प्रियंवदा	सम्पूर्ण कहानियाँ	राजकमल प्रकाशन, प्रथम, नई दिल्ली, संस्करण 2006
उपन्यास:		
1) उषा प्रियंवदा	पचपन खम्भे लाल दीवारें	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2006

2) उषा प्रियंवदा	रुकोगी नहीं राधिका	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2006
3) उषा प्रियंवदा	शेष यात्रा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1984
4) उषा प्रियंवदा	अंतर्वंशी	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004
5) उषा प्रियंवदा	भया कबीर उदास	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2007
6) उषा प्रियंवदा	नदी	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा सं. 2017
7) उषा प्रियंवदा	अल्पविराम	राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, सं. 2019

<u>सहायक ग्रंथ:</u>

1) डॉ. अनीता रावत	अमृतलाल नागर के उपन्यासों में आधुनिकता	चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1998
2)डॉ. आदित्य प्रसाद त्रिपाठी	औपन्यसिक समीक्षा और समीक्षाएं	अनुभव प्रकाशन 1981
3) इंद्रनाथ मदान	आलोचना और हिन्दी साहित्य	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.1977
4) इंद्रनाथ मदान	समकालीन साहित्य; एक दृष्टि	लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1977

5) डॉ. उर्मिला मिश्र	आधुनिकता और मोहन राकेश	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1980
6) डॉ. उषा यादव	हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
7) कृष्ण बिहारी मिश्र	आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिंदी साहित्य	आर्य बुक डिपो, संस्करण 1972, नई दिल्ली
8) डॉ. कविता चाँदगुडे	शशिप्रभा शास्त्री का कथा साहित्य	अमन प्रकाशन, कानपुर, उत्तर प्रदेश
9) डॉ. गंगाप्रसाद विमल	समकालीन कहानी का रचना विधान	सुषमा पुस्तकालय, संस्करण 1967
10) डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त	आधुनिक साहित्य और साहित्यकार	एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली,
11) डॉ. गो. रा. कुलकर्णी	बीसवीं सदी के पौराणिक हिंदी प्रबंधकाव्य और आधुनिकता	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999
12) डॉ. गोवर्धन सिंह शेखावत	नई कहानी: उपलब्धि और सीमाएँ	रामा पब्लिकेशन हाउस,संस्करण 1978
13) डॉ. चंद्रकांत बान्दिवदेकर	आधुनिक उपन्यास सर्जन और आलोचना	नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली
14) चार्ल्स बाउडेलेयर	'द पेंटर ऑफ मॉडर्न लाइफ	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1964
15) स. देव शंकर नवीन एवं सुशांत कुमार मिश्र	उत्तर आधुनिकता कुछ विचार	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000

16) डॉ. धनञय वर्मा	आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय	विद्या प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1984
17) स. डॉ. धनञ्जय	समकालीन कहानी:- कुछ विचार बिंदु	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989
18) डॉ. नगेन्द्र	आलोचक की आस्था श्री धनथ्याम दास बिडला व्याख्यानमाला 1962	कलकत्ता वि. दिल्ली, प्रथम संस्करण जुलाई 1966
19) स. डॉ. नगेन्द्र, सह स. डॉ. हरदयाल	हिंदी साहित्य का इतिहास	मयूर पेपरबैक्स, नई दिल्ली, सं. 2009
20) डॉ. पुष्पपाल सिंह	समकालीन कहानी: रचना मुद्रा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
21) डॉ. मंजुलता सिंह	हिंदी कहानी का विकास एवं युगबोध	पराग प्रकाशन, दिल्ली 1994
22) डॉ. रमेश कुंतल मेघ	आधुनिकताबोध और आधुनिकीकरण	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1969
23) राजनारायण शुक्ल	आधुनिकता बोध एवं मोहन राकेश का कथा साहित्य	बी. आर. पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001
24) रामचन्द्र तिवारी	हिंदी उपन्यास	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2006
25) राजेंद्र यादव	प्रेमचन्द की विरासत और अन्य निबंध	समसामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2013
26) डॉ. रामदरश मिश्र	आज का हिंदी साहित्य	अविनव प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1975

27) डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी	हिंदी नवलेखन	भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण 1960
28) डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास	राजपाल एंड संस, संस्करण 2009
29) डॉ. विजया वारद	साठोत्तरी हिंदी कहानी और महिला लेखिकाएं	विकास प्रकाशन, संस्करण 1993
30) डॉ. विद्याशंकर राय	हिंदी उपन्यास और अजनबीपन	सरस्वती प्रकाशन मंदिर, प्रथम संस्करण 1981
31) विलियम हेनरी हडसन	अन इंट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ़ लिटरेचर	अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली
32) श्यामसुंदर दास	हिंदी शब्द सागर	काशी नागरी प्रचारिणी सभा, नवीन संस्करण भाग-9 1975
33) शारदा बी. पटेल	उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में व्यक्त नारी चेतना	गुजरात विद्यापीठ,अहमदाबाद, संस्करण 2008
34) डॉ. शीला रजवार	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ	इस्टर्न बुक लिंकन, नई दिल्ली
35) संदीप विश्वनाथराव रणभिरकर	उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में आधुनिकता बोध	हिंदी विभाग हैदराबाद विश्वविद्यालाय, 2010
36) डॉ. साधना शाह	नई कहानी में आधुनिकता बोध	पुस्तक प्रकाशन, जयपुर 1978
37) डॉ. साधना अग्रवाल	वर्तमान हिंदी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1995

38) हुकुमचन्द राजपाल विविध बोध: नए हस्ताक्षर स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्कार 1976

कोश:

1) बृहत हिंदी कोश- स. कलिका प्रसाद, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी

2) अंग्रेजी हिंदी कोश- फादर कामिल बुल्के काथलिक प्रेस रांची 1968,

3) R.C Pathak- Bhargava's standard illustrated dictionary, bhargava press, Banaras

4) मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया- बॉर्कर, निर्मल प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1968

5) हिंदी साहित्य कोश- स. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, भाग-1, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1963

6) मानक हिंदी कोश- रामचन्द्र वर्मा, प्रयाग हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रथम संस्करण 1966

7) मानवमूल्य परक शब्दावाली का विश्वकोश- कालसीनस,एलक्स, मौनि- धर्मपाल(स.) सरूप एंड सन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005

8) वेबस्टर- थर्ड न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी वॉल्यूम-2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989

<u>पत्रिकाएँ:</u>

1) नया ज्ञानोदय : फरवरी 2007, अंक 48

2) ज्ञानोदय : फरवरी 1969, अंक 68, अगस्त 1969,अंक

3) मधुमति : जनवरी 1981

4) कल्पना : नवम्बर 1964, अंक 157

5) समकालीन सृजन : अंक-21 2002

6) नई कविता : अंक 1954

7) नव काव्य विशेषांक एक : अगस्त 1973

8) प्रकर : मार्च 1999, सितंबर 2000

9) नया प्रतीक : अप्रैल 1978

परिशिष्ट

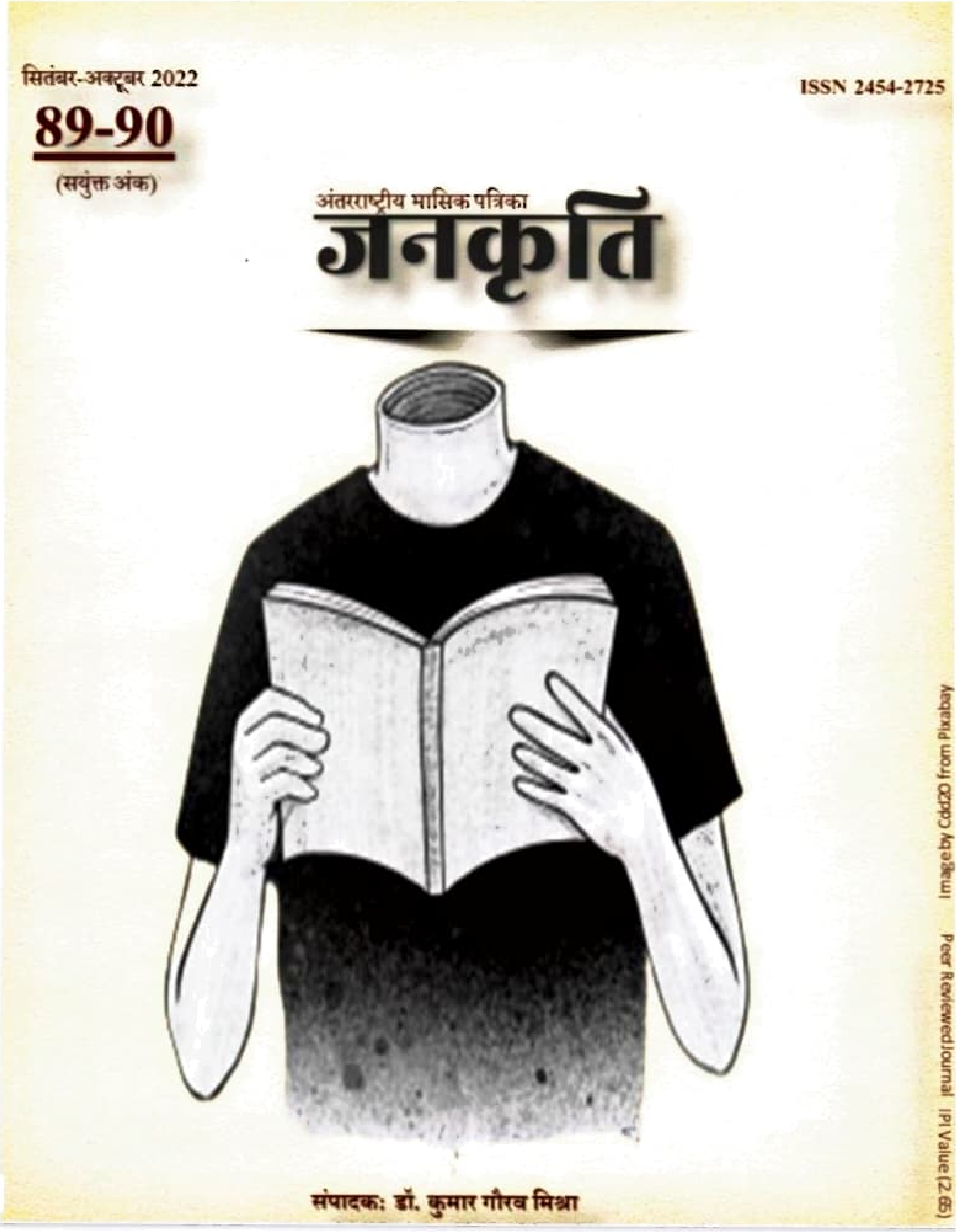
सितंबर-अक्टूबर 2022
89-90
(सयुंक्त अंक)
ISSN 2454-2725
अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका
जनकृति
Image by Cdd20 from Pixabay
Peer Reviewed Journal IPI Value (2.65)
संपादक: डॉ. कुमार गौरव मिश्रा

जनकृति

अंतरानुशासनिक पूर्व- समीक्षित द्विभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका

वर्ष 8, अंक 89-90 सितंबर-अक्टूबर 2022 (सयुंक्त अंक)

परामर्श मंडल

डॉ. सुधा ओम ढींगरा, प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय, प्रो. रमा, डॉ. हरीश नवल, डॉ. हरीश अरोड़ा, डॉ. प्रेम जन्मेजय, डॉ. कैलाश कुमार मिश्रा, प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, प्रो. कपिल कुमार, प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव प्रो. रत्नेश विश्वक्सेन

संपादक

डॉ. कुमार गौरव मिश्रा
(सहायक प्रोफ़ेसर, झारखंड केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

सहायक संपादक

डॉ. पुनीत बिसारिया
(एसोसिएट प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश)

संपादन मण्डल/विशेषज्ञ समिति

डॉ. सदानन्द काशीनाथ भोसले (प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ , महाराष्ट्र)
डॉ. दीपेन्द्र सिंह जाड़ेजा (प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, महाराजा सयाजीराव बड़ौदा विश्वविद्यालय, वड़ोदरा)
डॉ. नाम देव (प्रोफ़ेसर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. प्रज्ञा (प्रोफ़ेसर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. रचना सिंह (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. रूपा सिंह (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, बाबु शोभा राम गोवेरमेंट आर्ट कॉलेज, राजस्थान)
डॉ. पल्लवी (सहायक प्रोफ़ेसर, तेजपूर विश्वविद्यालय, असम)
डॉ. मोहसिन खान (प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, जेएसएम कॉलेज, रायगढ़, महाराष्ट्र)
डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा (सहायक प्रोफ़ेसर, मिजोरम विश्वविद्यालय, मिजोरम)
डॉ. प्रवीण कुमार (सहायक प्रोफ़ेसर, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश)
डॉ. मुन्ना कुमार पाण्डेय (एसोसिएट प्रोफ़ेसर, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय)
डॉ. चंद्रेश कुमार छतलानी (सहायक प्रोफ़ेसर, जेआरएन राजस्थान विद्यापीठ, राजस्थान)
डॉ. अंबिकेश त्रिपाठी (सहायक प्रोफ़ेसर, गांधी एवं शांति विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
डॉ. ज्ञान प्रकाश (सहायक प्रोफ़ेसर, बिहार)

संपादन सहयोग

श्री चन्दन कुमार (शोधार्थी, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा)
राकेश कुमार (शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)

संस्थापक सदस्य

कविता सिंह चौहान (मुंबई)
डॉ. जैनेन्द्र कुमार (बिहार)

अंतरराष्ट्रीय सदस्य

प्रो. अरुण प्रकाश मिश्रा (स्लोवेनिया), डॉ. इंदु चंद्रा (फ़िजी), डॉ. सोनिया तनेजा (स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी), डॉ. अनिता कपूर (अमेरिका), राकेश माथुर (लंदन), रिद्या (श्री लंका), मीना चोपड़ा (कैनेडा), पूजा अनिल (स्पेन)

जनकृति | अव्यवसायिक
सितंबर-अक्टूबर 2022 (सयुंक्त अंक) | अंक 89-90, वर्ष 8

सहयोग राशि	: 60 रुपये (वर्तमान अंक)	(डिजिटल प्रति सदस्यता)
	150 रुपये (संस्थागत)	
व्यक्तिगत सदस्यता	: 800 रुपये (वार्षिक)	
	3000 रुपये (पंचवर्षीय)	
	5000 रुपये (आजीवन)	
संस्थागत सदस्यता	: 1200 रुपये (वार्षिक)	
	6000 रुपये (पंचवर्षीय)	
	10000 रुपये (आजीवन)	
बैंक खाता विवरण	: Account holder's name- Kumar Gaurav Mishra Bank name - Punjab National Bank Account type – saving account Account no. 7277000400001574 IFSC code- PUNB0727700	
पत्र व्यवहार	: फ्लैट- जी 2, बागेश्वरी अपार्टमेंट आर्यापुरी, रातू रोड़, रांची, झारखंड पिन कोड: 834001, संपर्क- +918805408656	
नोट	: प्रकाशित रचनाओं से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। सम्पादन पूर्णतः अवैतनिक है।	
ध्यानार्थ	: अकादमिक क्षेत्र में शोध की गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप जनकृति में शोध आलेख प्रकाशित किए जाते हैं। शोध आलेखों का चयन विभिन्न क्षेत्रों के विषय विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है, जो विषय की नवीनता, मौलिकता, तथ्य इत्यादि के आधार पर चयन करते हैं। इसके अतिरिक्त पत्रिका में साहित्यिक रचनाएँ, वैचारिक लेख, साक्षात्कार एवं पुस्तक समीक्षा भी प्रकाशित होती है। जनकृति के माध्यम से हम सृजनात्मक, वैचारिक वातावरण के निर्माण हेतु प्रतिबद्ध है।	

JANKRITI
Interdisciplinary Peer-Reviewed Bilingual International Monthly Magazine
Editor: Dr. Kumar Gaurav Mishra
Language: Bilingual (Hindi & English)
Publisher: JANKRITI
ISSN: 2454-2725
Website: www.jankriti.com
Email: jankritipatrika@gmail.com

'शेषयात्रा' उपन्यास में आधुनिकता बोध की झलक

स्नेहदीप
एम.फिल शोधार्थी
हैदराबाद विश्वविद्यालय, तेलंगाना
मेल आइडी- mishrasnehdeep946@gmail.com
मोबाइल - 9958641375

शोध सारांश

आधुनिकता बोध, आधुनिक युग की एक अवधारणा है जो निरंतर प्रवाहमान है और यह ऐतिहासिक बोध से भी जुड़ा है। हम जानते हैं कि हर युग अपने बीते हुए युग की तुलना में कुछ न कुछ नवीन व आधुनिक होता है, पर वर्तमान आधुनिकता का जितना सहज बोध हमें आज के समय में देखने को मिलता है उतना पहले नहीं था। वर्तमान युग अपने आधुनिक होने के प्रति अधिक सचेत है और इसकी यह सजगता प्रतिफलित होकर साहित्य में भी देखने को मिलती है।

आधुनिकता अपने में व्यापक अर्थ को समाहित किये हुए है। इसे कभी 'प्रक्रिया' के रूप में समझा गया है तो कभी मूल्य के रूप में भी। हम यह जानते हैं कि आधुनिकता कोई बाह्य आरोपित वस्तु नहीं है बल्कि यह आपकी मनोवृति व दृष्टिकोण का परिवर्तन है। आधुनिकता अगर समाज के आर्थिक विकास और बदलाव से जुड़ाव रखता है तो यह एक नवीन दृष्टिकोण को भी इंगित करता है। आधुनिक युग की जो विवशता है हार, लाचारी, चीख, व्यर्थता, भेद-भाव, बेगानापन, अनिश्चितता, घुटन, बेरोजगारी, निराशा, टूटते सम्बन्ध, भय आदि विभिन्न आयाम उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में परिलक्षित होते हैं। आधुनिक जीवन में व्याप्त मूल्यों का विघटन, संयुक्त परिवारों की टूटन, संबंधों में उदासीनता तथा नए उभरते मानवीय सम्बन्ध आदि आधुनिक प्रवृत्तियाँ उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में देखने को मिलती है।

बीज शब्द- *आधुनिकता बोध, संत्रास, अकेलापन, अजनबीपन, यांत्रिकता*

शोध आलेख

आधुनिक युग 'रेनेसां' से आरम्भ हुआ लेकिन भारतीय इतिहास में इस युग की शुरुआत हिंदी साहित्य के आधुनिककाल से मानी जाती है। यूरोप में सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया, जिसने पूरे यूरोप की प्रकृति को बदल दिया। नगरीकरण- शहरीकरण के कारण मानवीय स्वभाव में भी बदलाव आया। सामाजिक मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव आया। यह काल 'आधुनिक काल' से

अभिहित है इसका प्रभाव भारतीय जनमानस पर भी हुआ और एक नया बोध सर्वत्र छा गया वह था 'आधुनिक बोध'। आधुनिकता बोध का अर्थ है वर्तमान समय में अस्तित्व में आए ज्ञान को जानना, वर्तमान को महसूस करना, समझना। रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार "आधुनिकता एक प्रक्रिया का नाम है। यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। आधुनिक वह है जो मनुष्य की ऊँचाई, उसकी जाति या गोत्र से नहीं, बल्कि उसके कर्म से नापता है। आधुनिक वह है, जो मनुष्य मनुष्य को समान समझता है।"1 विभिन्न आलोचकों ने समयानुसार परिवर्तित होते परिस्थितियों के ज्ञान को ही आधुनिक बोध माना है। शेषयात्रा के संदर्भ में देखें तो यहाँ उषा प्रियंवदा ने आधुनिक नारी की छटपटाहट, संघर्ष, तड़प एवं संत्रास की स्थिति को अनुभूति के स्तर पर पहचाना और व्यक्त किया है। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य परिवेश को अपने कथा साहित्य में निरूपित किया है और इसमें सफल भी रहीं हैं। इस उपन्यास की पात्र अनु आत्मान्वेषण करते हुए मुकम्मल व्यक्तित्व को प्राप्त करने में सफल रहती है।

आधुनिकता बोध की झलक

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य की प्रमुख लेखिकाओं के बीच उषा प्रियंवदा की अपनी एक विशेष पहचान है। सीधे- सच्चे कथानक को शिल्प से अत्यधिक बोझिल किये बिना अभिव्यक्त करने का उनका तरीका अनोखा रहा है। उनके कथ्य और शिल्प की सादगी पाठक के मन को छू लेनेवाली है। उनकी अधिकांश रचनाएँ पारिवारिक रिश्तों की घुटन- टूटन पर आधारित है। "व्यक्ति के सूक्ष्म मन को टटोलना, उसे खोजना, मन की व्यथा की गाथा चित्रित करना उनकी एक प्रमुख विशेषता है। जीवन की नवीन परिस्थितियों के साथ समझौता न कर पाने के कारण आज स्त्री और पुरुष दोनों किस प्रकार असम्बद्धता, अजनबीपन, तलखी एवं जीवन की विसंगतियों का अनुभव कर रहे हैं और तनाव झेल रहे हैं इसका यथार्थ चित्रण उषा जी ने किया है।"2

'शेषयात्रा' उपन्यास में प्रणव और अनु नायक और नायिका हैं। अनु के खो गए आत्मसम्मान को प्राप्त करने की कहानी है 'शेषयात्रा'। प्रणव से विवाह और स्वप्न जैसा जीवन अनु को एकदम रानी बनकर रहने का एहसास कराता है और जैसे-जैसे उपन्यास आगे बढ़ता है आधुनिकता बोध के विभिन्न पहलू ऊब, घुटन, संत्रास, अकेलापन, अजनबीपन और टूटते हुए सम्बन्ध से जूझती अनु की कहानी से हम परिचित होते चले जाते हैं। उपन्यास की शुरुआत ही अनु के बिखरे हुए जीवन और

उसके अकेलेपन के एहसास से होती है। "दिन के उजाले में जो चीज़ इतना त्रास नहीं देती; वही रात के अकेले, घुप अँधेरे में कितनी बड़ी, कितनी दुर्गम लगने लगती है। अकेलेपन के उस डर का भी जैसे एक रूखा-सूखा, तालू से चिपका स्वाद है, वह स्वाद अनु को एक मिनट भी नहीं छोड़ता।"3

अकेलापन और अजनबीपन

बदलता हुआ जीवन मूल्य ही व्यक्ति में अकेलापन और अजनबीपन की भावानाओं को उत्पन्न करता है। अपने आस-पास के परिवेश में व्यक्ति इससे जूझना रहता है। हम जानते हैं कि यह स्थिति औद्योगिकरण, यान्त्रिकता, बढ़ती हुई जनसंख्या, बेकारी और आर्थिक संकट के कारण उत्पन्न हुई है। स्वतन्त्रता के पश्चात उत्पन्न मशीनीकरण, संयुक्त परिवार के विघटन ने व्यक्ति के मन में अलगाव और अजनबियत की अनुभूति को गहराया है। कथा साहित्य में भी इस बदलते हुए संबंधों का स्वर हमें देखने को मिलता है।

आधुनिक युग में अन्य कथाकारों की तरह उषा प्रियंवदा ने भी मानवीय जीवन के अकेलेपन और अजनबीपन को अभिव्यक्त किया है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि "आपके(उषा प्रियंवदा) उपन्यासों में नई कविता दौर की आधुनिकता के सारे तत्व- अकेलापन संत्रास, ऊब, घुटन, अजनबीपन, विद्यमान है।"4

शेषयात्रा में हम पाते हैं कि अनु स्वावलंबी होने पर स्वतन्त्र अस्तित्व की लड़ाई लड़ती है, और उसे कभी-कभी इस लड़ाई में एकदम अकेलापन और अजनबी होने का भी एहसास होता है। अनु का यह अकेलापन समाज द्वारा प्रदत्त है। बचपन में ही माता-पिता के देहांत के बाद उसका पालन-पोषण मामा-मामी ने किया, इसलिए वो इस अकेलेपन की कड़वाहट से बचपन से ही परिचित है। प्रणव से शादी तय करते वक्त भी उसका ये अकेलापन साफ दिखाई देता है। "सारे तूफान, हलचल के बीच अनु चुप है। उससे कुछ पूछा नहीं जाता, उसे कोई कुछ नहीं बताता।"5 विवाह हो जाने के पश्चात जहाँ पहले 'अनुका' के जीवन के सारे निर्णय उसके घर वाले लेते थे, वहीं विवाह के पश्चात ये निर्णय प्रणव लेने लगा है। अनुका ऐसे में अकेली पड़ जाती है। विभा के साथ भी समय बिताने पर उसे ऐसा लगता है कि वह उस परिवेश का हिस्सा नहीं है। वहाँ पर अनुका के सामने "शराब की बोतलें खुलने लगी। अनु कुर्सी पर

चुपचाप बैठी रही और सब कुछ ऐसे देखती रही कि वह इस दृश्य का केंद्र नहीं, मात्र दर्शक हो।"6

प्रणव के अस्पताल चले जाने के बाद अनुका बंधी-बंधाई दिनचर्या द्वारा समय बिताती है। और कभी कभी जब अस्पताल से फोन आता है कि डॉ. कुमार एमर्जेंसी में व्यस्त हैं लौटने में देर हो जाएगी, तब अनु अकेली रह जाती है। "उसे पहली बार लगा कि उसके लिए प्रणव एकदम अपरिचित है, वह उसके बारे में कुछ छिटपुट बातें छोड़कर कुछ नहीं जानती। यह पुरुष उसे कहाँ ले जा रहा था। अनु के पेट में बड़ा-सा बगुचा उठा और हलक में अटक गया, वह फिर रो पड़ी।"7

प्रणव के बहुत देर-देर तक घर न लौटने पर अनु अकेली पड़ जाती है और इस शहर में अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए माँ बनने की इच्छा जाहिर करती है पर प्रणव यह कहकर अनु की इस इच्छा को टाल देता है कि हमें अभी अपनी लाइफ एन्जॉय करनी चाहिए, उसके बाद बच्चों के बारे में सोचना चाहिए। बच्चों के बदले प्रणव अनु को कार खरीद कर देता है और उसी निर्जीव वस्तु से अपना अकेलापन दूर करने की सलाह देता है साथ ही वह अनु से कहता है कि "तुम कहीं चली क्यों नहीं जाती? अपनी किसी सहेली के घर?"8

प्रणव अनु को पार्टियों में शामिल हो कर अपने अकेलेपन से मुक्त होने के लिए कहता है, पर अब अक्सर अनु को पार्टियों में भी अकेले ही जाना पड़ता है।

प्रणव फिल्म निर्माण के लिए केलिफोर्निया जाना चाहता है और इसके लिए वह अस्पताल से अनिश्चित अवधि की छुट्टी ले-लेता है। जब अनु को इस बात का पता चलता है तो वो सुबकती हुई प्रणव से कहती है "मुझे भी साथ ले चलो, प्लीज़। मैं अकेली कैसे रहूँगी? मैं तो डर के मारे मर जाऊँगी।"9 यहाँ अनु के अकेलेपन की तीव्रता मुखर हो उठती है। घर पर अकेले रहते हुए वह प्रणव के बारे में सोचती रहती है कि अब उसे पार्टियों में भी जाने के लिए भी शामें नहीं बचती और प्रणव की असलियत का पता चलने पर अनु अधिक क्रुद्ध हो जाती है, क्योंकि आने वाले अकेलेपन और अजनबीपन का अंदेशा उसे हो जाता है। उस अपरिचित देश में उसका प्रणव के बिना और कोई नहीं। यहाँ अनुका के अकेलेपन का दर्द छिपा हुआ है। कभी-कभी अनुका को लगता है कि वह मर गई है, तभी तो शरीर के होने का कोई एहसास नहीं होता। अजनबी बनने पर वह अपने से पूछती है कि क्या वह पागल हो गई है?

इससे बचने के लिए वह प्रणव के पैर पकड़कर उसे साथ रख लेने की याचना करती है। लेकिन प्रणव नहीं मानता और अनु उस अजनबी शहर में अकेली रह जाती है।

पति-पत्नी के टूटते सम्बन्ध

आधुनिक समय में और विशेषकर स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्त्री- पुरुष संबंधों का स्वरूप बहुत बदल गया है। और आज के युग की सबसे बड़ी समस्या 'रिश्तों का टूटना ही है'। स्त्रियाँ अब आत्मनिर्भर हैं और पुरुष अभी तक अधिकारवादी प्रवृत्ति से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाये हैं यही वजह है कि दोनों के मध्य टकराव होता रहता है। 'शेषयात्रा' उपन्यास में अनु आत्मनिर्भर नहीं है, परंतु अंत तक हम पाते हैं कि अनु अपनी बचपन की सहेली दिव्या की सहायता से खुद को इस दारुण स्थिति से निकल कर स्वावलम्बी होने का सफर सफलता पूर्वक पूर्ण करती है। बड़ी लल्ली और उनका विदेश में रहने वाला बेटा प्रणव डौली बीवी को देखने के लिए घर आते हैं पर प्रणव डौली की जगह अनुका को एक ही नज़र में पसंद कर लेता है। प्रणव विभा से कहा करता था कि वह अपनी जीवन संगिनी का चयन बहुत ठोक बजाकर करेगा, पर अनु को देखते ही वह रीझ जाता है। "मुझे कैरियर गर्ल नहीं चाहिए थी, प्रणव ने कहा, मैं चाहता था सरल, स्नेहशील बीवी, जिसके साथ बैठकर मुझे सुख-चैन मिले।"10 प्रणव को हमेशा नंबर वन बने रहना पसंद है, घर, गाड़ी और पत्नी सब में। अनु अपने रूप-यौवन से बे-खबर थी, उसे किसी ने नहीं बताया कि वो कितनी सुंदर है, पर प्रणव ने उसे ढूँढ निकाला था। एक बार वाटरमैन ने उसके सौंदर्य की तारीफ करते हुए कहा था "तुम जैसी ब्यूटी की ज़िन्दगी सिर्फ ओ.के. ही है? तुम्हें तो मॉडल बनना चाहिए, टेलीविज़न की अभिनेत्री, तुम घर में अपना सौंदर्य बर्बाद कर रही हो।"11 साथ ही बिरादरी के लोगों ने भी उसके भाग्य उदय होने की प्रशंसा की "लौंडिया का भाग जगा है। विलायत का डॉक्टर, इतना गहना-कपड़ा, तब अनु को लगा, हाँ शायद भाग्योदय हुआ है। वह प्रणव के प्रति कृतज्ञ थी, इतना सब कुछ, सिर्फ एक छोटी-सी आकस्मिक झलक पाने भर ही से।"12 अनु की मासूमियत देखकर रेखा ने पिघलकर कहा था "प्रणव, टेक केयर ऑफ हर, शी इज़ जस्ट ए किड।"13

आरम्भ में जब प्रणव अनु को विदेश ले आया, तो उसे रानी बनाकर रखने का दावा करता है। और अनु को भी यही लगता है कि वह सचमुच रानी है। इतना बड़ा घर, गाड़ी, टेलीविज़न, तरह-तरह की मशीनें, उसके पास सब सुविधाएं हैं और इतना

अधिक प्यार करने वाला जीवन साथी भी। वो दोनों 'गोल्डन कपल' कहकर पुकारे जाते हैं। "प्रणव के पास गुण है, मेधा है, लोगों को जीतने का नुस्खा है, अनु में घमंड नहीं है। हर चीज़ होने के बाद भी मुस्कुराहट में एक शर्मीलापन, जिसे लोग बहुत चार्मिंग पाते हैं। प्रणव से मशवरा किये बिना वह कोई निर्णय नहीं ले पाती, 'आज क्या खाओगे'? से लेकर 'मैं शाम को क्या पहनूं'? सभी कुछ प्रणव की मर्जी से होता है।"14

एक दिन अचानक अनु की ज़िन्दगी में एक मोड़ आ जाता है। प्रवासी भारतीयों पर एक डॉक्यूमेन्ट्री बन रही थी, और शूटिंग अनु और प्रणव के घर पर ही होने वाली थी। चंद्रिका राणा इस फिल्म की डायरेक्टर थी। सब ने अनु की बहुत तारीफ की "आपके पास भारत का अलभ्य रत्न है।"15 इसके बाद अनु ने महसूस किया कि जो ज़िन्दगी इतने आराम से बसर हो रही थी वो ज़िन्दगी अब लड़खड़ाने लगती है। "प्रणव की लम्बी-लम्बी चुप्पियां, उसका अनमनापन, उसका बात-बेबात पे गरम हो आना, अनु को झिड़क देना।"16 उनकी ज़िन्दगी अब खुशहाल ज़िन्दगी नहीं रह गई थी। और यही उपन्यास का वो मोड़ है जहाँ हम इस सम्बन्ध को बिखरते हुए और धीरे-धीरे टूट जाने की त्रासदी को महसूस करते हैं। अनु की यह जीवन यात्रा प्रणव द्वारा उसे अकेला छोड़ कर चले जाने से पूरी तरह डगमगा जाती है, पर अपनी इस शेष यात्रा को सफलता तक पहुँचाती है और अंत तक आते-आते एक सफल डॉ. बन जाती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत उपन्यास की अनु स्वयं के बल पर अपनी अधूरी यात्रा पूरी करती है और एक सफल डॉक्टर के रूप में अपना आत्म सम्मान भी वापस प्राप्त कर लेती है। हम देखते हैं कि अनु अब वो डरी, सहमी और बस आदेशों पर काम करने वाली अनु नहीं रही, अब वो अपने निर्णय स्वयं लेती है। आधुनिकता का एक पहलू यह भी है कि ँ अपने निर्णय लेने के लिए मुक्त है चूंकि अब वो आत्म निर्भर है। अनु ने पूरी तरह बिखर कर भी खुद को टूटने नहीं दिया और प्रणव द्वारा खुद को त्याग दिए जाने पर भी अपने खोए हुए स्वाभिमान को स्वयं के बल पर प्राप्त कर अपनी 'शेषयात्रा' पूर्ण की। इसी तरह हम देखते हैं कि उषा प्रियंवदा अपने उपन्यासों में समाधान देती हुई भी नज़र आती हैं।

 ISSN 2454-2725

संदर्भ सूची

1. आधुनिकता बोध एवं मोहन राकेश का कथा साहित्य- राजनारायण शुक्ल, बी. आर. पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001,पृष्ठ 17
2. उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में आधुनिकता बोध- संदीप विश्वनाथराव रणभिरकर, हिंदी विभाग हैदराबाद विश्वविद्यालय, तेलंगाना, पृष्ठ 159
3. शेषयात्रा - उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,1984, पृष्ठ 07
4. हिंदी उपन्यास- रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ 178
5. शेषयात्रा- उषा प्रियंवदा,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,1984, पृष्ठ 15
6. पृष्ठ 18
7. पृष्ठ 17
8. पृष्ठ 29
9. पृष्ठ 49
10. पृष्ठ 51
11. पृष्ठ 33
12. पृष्ठ 31
13. पृष्ठ 31
14. पृष्ठ 31
15. पृष्ठ 41
16. पृष्ठ 42